

णमो समणस्स भगवओ महावीरस्स ।
प्रातःस्मरणीय प्रभु श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरीश्वर सद्गुरुवर-
चरणारविन्देभ्यो नमः ।

मुनिराज श्रीमत्क्षमाकल्याणजी गुम्फित-
श्री अष्टाहिका व्याख्यानम् ।



—: भाषान्तर :-

परमयोगीराज, शासनप्रभावक कलिकालसर्वज्ञकल्प, सर्वतंत्र स्वतंत्र प्रातःस्मरणीय
प्रभु श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी म०



—: गूर्जरानुवाद-संपादन :-

गुरुदेव पद्मपङ्कजमधुप प्रशिष्य
आचार्यदेवेश श्रीमद् विजयजयन्तसेनसूरीश्वरजी म०



—: प्रकाशक :-

श्री राज राजेन्द्र प्रकाशन ट्रस्ट,
अहमदाबाद [गुजरात]

* पुस्तक : श्री अष्टाङ्गिका व्याख्यानम्

* लेखक : श्री महाभाकड्याबुल्लु महाशय

* अनुवादक : परम योगीन्द्र प्रातःस्मरणीय
प्रभुश्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरल म.

* गुजराती अनुवाद : आचार्य द्विवेश श्रीमद्विजय
नयनतसेनसूरीश्वरल म. 'मधुकर'

* प्रकाशक : श्री राज राजेन्द्र प्रकाशन ट्रस्ट, अमदावाद

* प्राप्तिस्थान :-

१ श्री राज राजेन्द्र प्रकाशन ट्रस्ट,
राजेन्द्रसूरि जैन ज्ञानमंदिर,
रतनपोषा, ढाथीभाना,
राजेन्द्रसूरि चौक,
अमदावाद (गुजरात)

२ परिषद् लवन,
भरा स्टेट-३, पो. राजगढ (धार)
(म० अ०)

* प्रथमावृत्ति ५००

* द्वितीयावृत्ति १०००
श्री वीर सं. २५१४
श्री राजेन्द्रसूरि सं. ८३
चिह्न सं. २०४५

* मूल्य : १० रुपिया

* मुद्रक :-

श्री लम्बि प्रिन्टर्स,
पन्नगरा शेरी, कृष्णवाड.
सनसवाणे डेपो, भावनगर.

प्रथम आवृत्ति यत्किञ्चित् ।

पर्वीधिराज पर्वूपण !

इन्शान को भगवान एवं आत्मा को परमात्मस्थिति तक पहुँचनें आवश्यक मार्गदर्शक बनते हैं ये पर्व !

छोटे से बड़े, अवालवृद्ध नर-नारियों में अपार हर्ष, उस्लास एवं उत्साह की वृद्धि हो जाती है इन के आगमन पर !

जैन धर्म अपनी अहिंसात्मक आचारप्रणाली को व्यवहार में मुख्य मानता रहा है और इसी लिये इस के प्रत्येक पर्व में त्याग की प्राधान्य रहा है ।

तप, संयम, दान एवं आश्रव निरोध की दुंदुभियां बजा कर यह पर्वों की महानता को प्रदर्शित करता है ।

जीवन में और विशेष कर पर्वीधिराज के इन दिनों में जो आवश्यकिय कार्य हैं उन का वर्णन प्रवचनों के माध्यम से संप्राप्त होता ही है ।

त्यागमय जीवन एवं रागमुक्त व्यवहार को जीवन में अपना कर प्रत्येक मानव अपना उत्थान आसानी से कर सकता है ।

इन्शान में इन्शान के गुणों का आविर्भाव हो, उस में वृद्धि हो, और एतदर्थ ही स्वाध्याय, अध्ययन, वांचन मनन परमतम सहायक बनते हैं ।

वांचन, पृच्छन, परावर्तन एवं अनुप्रक्षण के साथ धर्मकथा युक्त चिन्तन प्रारंभ होता है जब जीवन में तत्र मानव की सुषुप्त शक्ति जागृत हो कर के उसे साधकतम स्थिति तक पहुँचाती है ।

पर्वीधिराज के दिनों में प्रारंभ में श्री अष्टान्हिका व्याख्यान का वांचन होता है । उसकी क्रमी को लक्ष्य में रख कर यह प्रकाशन किया गया है ।

इस में संस्कृत के मूल का ही अक्षरशः अनुवाद है । फिर भी कोई भी क्षति मेरे मति दोष से रह गई हो तो क्षमा करेंगे ।

शुभम् ।

श्री राजेन्द्रसूरि जैन ज्ञान मन्दिर,

जोधपुर

२०३० भाद्रव सुदि ४

गुरुदेव चरणोपासक,

मुनि जयन्तविजय

' मधुकर '

દ્વિતીય આવૃત્તિની વેળાએ....

પર્વાધિરાજ !

આત્માની ઉન્નવણતાનું પુનીત પર્વ !

કર્મોના સામે આંદોલન આદરવાનું અતુલ્ય પર્વ !

અનાદિથી જન્મેલા અજ્ઞાન અને મિથ્યાત્વના મેલને ઉતારી પોતાની જીતને નિર્મળ ખતાવી લેવા માટેનો અણુમોલ અવસર !

જીવ અને જડના સંમિશ્રણમાં ઉત્પન્ન સંસાર અને તન્નજન્ય દુઃખોથી દખાતો અને રીખાતો રહેલો જગતનો જીવડો.

જેની અંખના રહે છે દુઃખોથી મુક્તિ મેળવવાની દખાણુમાંથી ઉર્ધ્વસ્થિતિને પામવાની અને સ્વયને સ્વયંની સ્થિતિમાં સ્થિર કરવાની.

તેના માટે સુંદર સંયોગ છે પર્વાધિરાજની પાવન આરાધના !

કેમ ? અને કેવી રીતે ? તેનો જવાબ છે પ્રસ્તુત અષ્ટાન્લિકા વ્યાખ્યાનમાં.

જેની એક આવૃત્તિ છપાયેલી. આવશ્યકતા જણાતાં આ બીજી આવૃત્તિનું પ્રકાશન ટ્રસ્ટ તરફથી થઈ રહ્યું છે જે પ્રસન્નતાનો વિષય છે.

બાગરા
અપાડ સુદ ૧
૨૦૪૫

—જયંતસેનસૂરિ.

પ્રકાશકીય બીજી આવૃત્તિ

સાસાંરિક જીવનના પ્રત્યેક કાર્યક્રમમાં વ્યક્તિ જેટલો તત્પર અને કટિબદ્ધ હોય છે તેથી વધુ તેણે અત્મિક સાધના અને આરાધના દરેક પ્રસંગે પોતાની જાતને સાવધાન અને વ્યવસ્થિત રાખવાની પરમ આવશ્યકતા છે.

જીવનની દિશા અને આરાધનાની સુંદર પ્રેરણા આપનાર પર્વાધિરાજ પર્યુષણમાં જેના વાંચન દ્વારા જગૃતિના સૂરો સાંભળવા મળે છે તે ગ્રન્થ શ્રી અષ્ટાન્હિકા વ્યાખ્યાન !

ગ્રન્થના આવકાર કરતાં તેમાં આવતી ભાવના મહત્ત્વની છે. નાનો છતાં વિશિષ્ટ ભાવોથી ભરેલ આ ગ્રન્થ છે.

જેની પ્રથમાવૃત્તિ પૂર્વે પ્રકાશિત થયેલ, તેની બીજી આવૃત્તિની માંગણી ચતાં ટ્રસ્ટ દ્વારા પ્રકાશિત કરવામાં આવી રહું છે.

પાઠકગણુ લાભ ઉઠાવશે એ જ અભ્યર્થના....

વ્યવસ્થાપક
શ્રી સુબ્રહ્મણ્ય પ્રકાશન ટ્રસ્ટ,
અમદાવાદ

* अभिनंदन स्वामि जिन स्तुति *

अभिनंदन वंदन, सेवित सुरनर छंद ।
 सुभ संपत्ति अक्षय दायक परमानंद ॥
 संवर सुत धरतां संवर लावशु' संग ।
 त्रिभुवनना स्वामि ध्यात्रुं धारी उभंग ॥१॥

सद्गु जिनवर निर्मल पाभ्या पद अविकार ।
 वीसस्थानक सेवी, कर्म कलंक निवार ॥
 बाल बीला काया श्याम सुवर्णो जेह ।
 ते जिनवर सखणां हृदय धरी नभुं नेह ॥२॥

जिनवाणी जजभां जवजल तारणुहारी ।
 मिथ्यातम वारी समकित शुद्धिकारी ॥
 सुरि राजेन्द्ररासन निश्चयधी जयकारी ।
 सुरि यतीन्द्र भाषे जयंतसेन क्षितिकारी ॥३॥

—०—

* तालनपुर तीर्थ स्तुति *

अकलंकी जिन अक्षय पद धर अजरामर अविकाराण ।
 ज्ञाता इष्टा विद्ये विधायक त्रिजग ज्यो उद्गाराण ॥
 प्रशम रसकर आत्मानंदी, वंदत पाद निकंदाण ।
 तालनपुर प्रभु पार्श्व'आदीधर, सेवित सुरनर छंदाण ॥१॥

सकल कर्मका छेदन कर के, वेदन सर्व निवाराण ।
 अगम अगोचर अकल अविकल, तीर्थ'कर पद विराण ॥
 ताव स'वेदन ज्ञान प्रदाता, शैविशे जिन वंदाण ।
 तीर्थ प्रति प्रभु सासननायक, दायक सौम्य भुंदाण, ॥२॥

संसार व्या'तप तस लवेको, शांतिप्रदा जिनवाणीण ।
 सम्यग् शोधि आत्म समाधि, कारक नित्य प्रभाणीण ॥
 सुरिराजेन्द्रने सत्य अताया, धर्म' निश्चय व्यवहारेण ।
 'जयंतसेन' सुरि यतीन्द्र भाषी, जिनवाणी द्विल धारेण ॥३॥

* पद्मप्रभु स्तुति *

(शार्दूल वृत्तम्)

विद्यानंद प्रदा सदा सुभतिदा निःशेषकर्माङ्कुरा ।
 लब्धांभोज विक्रसका जयकरा भिष्याह्वरा आस्करा ॥
 सेवा नित्य सुरा सुरेन्द्र करता दुःखो ह्वरा कर्माङ्ग ।
 श्रीपद्मप्रभु वंदना अरक्षुभां माता सुखीभांगण ॥१॥

वीसस्थानकनी करी जिनवरा सर्वे समाराधना ।
 आवी आव मुखावनी रमणुता पाभ्या करी साधना ॥
 चोवीसे जिनराज व्याज प्रकृभुं, त्रिकाणभां के धया ।
 कर्माङ्गहन भूणधी प्रभु करी मुक्तिपुरीभां गया ॥२॥

वाण्डी के हितकारिणी जगतभां पाभी परापुण्यधी ।
 तरवा तरव विवेक युक्त समल सद्भाव नैण्यधी ॥
 जेनाकारा प्रकाशका दिनमण्डी, राजेन्द्रसूरीधरा ।
 ध्यावे नित्य 'जयन्तसेन' वसुधा, तीर्थ'करा धंधरा ॥३॥

ॐ

* वासुपूज्य जिन स्तुति *

त्रय काणना गणु लोकेना सद्गु आवने के अणुता ।
 परभावधी रहो दूर के निज व्यात्म सुभने भाणुता ॥
 अज्ञानतम हारके प्रभु वसुराय नंदन वंदिये ।
 प्रभु वासुपूज्य जिनेन्द्र जयतां पापकर्मां (नकंटीये ॥१॥

जे नाम आकृति द्रव्य आवे जिन धया अवहारके ।
 ते सर्वने भम वंदना के त्रयु लुवन्ना तारके ॥
 नहि कोह मोह न लोह किंचित् परम पदने पाभीया ।
 परमेष्ठि पदधर विधि, वंदित पाप आश्रय तभीया ॥२॥

निक्षेप नय पंचांगी धावन अज्ञानने वारके ।
 जिन ववणुने विस्तार करेता गणुधरा श्रुतधारका ॥
 प्रभु सुरविर राजेन्द्र आवित, सत्यने के भन धरे ।
 नित् जयन्तसेन जिन अरक्षु सेवत शाधिता सुभ सवरे ॥३॥

* સંજ્ઞાય *

જીવનજી ! જગજો જગ જોઈ રે;
 ભોલે ભોલે ઉભરિયા ખોઈ!! જીવનજી.....૧૧૧૧

જગ સ્વાસ્થ્ય ઠા યહ મેસારે, મોહ મમતાઠા જૂઠા જમેસારે;
 સખ છાડકે જય અકેલા!! જીવનજી.....૧૧૨૧

કૌન દુનિયામાં સોચ્યલે તેસારે, કહુતા તન-ધન પરિજન મેસારે;
 આખિર જંગલમે' તેસા રેસા !! જીવનજી.....૧૧૩૧

મોડ મોડ કે જીવન ખોતારે, જીવન હારકે અન્તમે' રોતારે;
 કર્મ મેલકો કયો નહીં ધોતા !! જીવનજી૧૧૪૧

મહલ-મન્દિર અંગલા ભારિરે, પુત્ર માતા-પિતા પતિ નારિરે;
 દુઃખ સમયમે' દુનિયા ન તાહરી !! જીવનજી.....૧૧૫૧

ખોટી પ્રીત સજી કી ભાઈરે, કેખા-કેખીકી સારિ સગાઈ રે;
 કેઈ આપના નહી હૈ સખાઈ !! જીવનજી.....૧૧૬૧

દષ્ટિ ખોલકે કેખો લાયારે. ખોયા કિતના-કિતના વાયારે;
 ધર્મધ્યાનમે' કિતના લગાયા !! જીવનજી.....૧૧૭૧

મેરા-મેરાકી જપતાં માળા રે, કિતના ચલતા હૈ સોચ્યા જોરાસારે;
 આત્મ શુદ્ધિકા પીલોને ચાલા !! જીવનજી.....૧૧૮૧

યે હુબર તર્કાસિ ચીખાસારે, વારાનગરમે' તપ-જપ ખાસારે;
 ભવ અમખ્યાસ ઠાલોને પાસા !! જીવનજી.....૧૧૯૧



॥ ॐ अर्हते नमः ॥

शान्तिशं शान्तिकर्तारं, नत्वा स्मृत्वा च मानसे ।

अष्टाह्निकाया व्याख्यानं, लिख्यते गद्यबन्धतः ॥ १ ॥

[हिन्दी] जन गण मानस में एवं विश्व में शान्ति स्थापित करने वाले श्री शान्तिनाथ प्रभु को नमस्कार करके उनका हृदय में स्मरण करके गद्यमय भाषा में अष्टाह्निका व्याख्यान लिखता हूँ ॥ १ ॥

पर्यूषण किसे कहते हैं ?

साधु (भ्रमण) जन शरदू और ग्रीष्म ऋतु में ८ मास तक भ्रमण करते रहते हैं, वे वर्षाऋतु में आपाढ शुक्ला पूर्णिमा के पचास दिन पश्चात् सर्व प्रकार से एक स्थान पर रहें, उसे पर्यूषण (पञ्चसण) कहते हैं ।

[गु०] विश्वमां शान्तिनी स्थापना करनारा श्री शान्तिनाथ प्रभुने नमस्कार करीने अने तेमनुं हृदयमां स्मरण करीने गद्यमय भाषामां हुं अष्टाह्निका व्याख्यान लपी रह्यो छुं.

पर्यूषणु केने कहेवाय ?

जिनेन्द्रशासनना आराधक अने जिनप्रवचनना प्रवाहक अेवा भ्रमणो शरदऋतुथी ग्रीष्म ऋतु सुधी आठ महिना आम-नगरमां विहार (विचरणु) करता रहे छे, ते वर्षाऋतुमां अथाऽ सुद १५ पछी सर्व प्रकारे अेक स्थान पर रहे छे, तेने पर्यूषणु कहेवाय छे.

[सं०] इह सकलदुष्कर्मनिवारिणी, विमल-धर्म-कर्म-कारिणी, इह परत्र च कृतप्रभृतशर्मणि श्रीपर्युषणादिपर्वणि समागते सति सकलसुरासुरेन्द्राः सम्भूय श्री-नन्दीधरनाम्नि अष्टमद्वीपे धर्महिमानं कर्तुं गच्छन्ति ।

[हिन्दी] सब प्रकार के दुष्कर्मों को दूर करने वाले, निर्मल धर्म और कर्म को करने वाले, इस लोक और परलोक में भी कल्याण करने वाले ऐसे इस पर्युषण

पर्वके आने पर सभी ६४ इन्द्र देवी-देवता सहित मिलकर नन्दीश्वर नाम के आठवें द्वीप में धर्ममहिमा को करने के लिए जाते हैं ॥

[गु०] सर्व प्रकारना दुष्कर्मोनि दूर करनारा, आलोक अने परलोकमां पशु कल्याण करनारा पर्वधिराज श्री पशुधरना आगमन समये ६४ इन्द्रो पीताना सर्व देवी-देवताना परिवार साथे धर्मनी प्रभावना अने आराधना भाटे नन्दीश्वर नामना आठमा द्वीपमां जय छे.

[सं०] तत्र तावत् नन्दीश्वरद्वीपस्य मध्यभागे चतुर्दिक्षु चत्वारोऽञ्जनगिरयः सन्ति । अञ्जनवर्णाः पर्वता इत्यर्थः । तेषां प्रत्येकं चतुर्दिक्षु चतस्रो वाप्यः सन्ति तासां वापीनां मध्यभागेषु दक्षिणमुखपर्वताः दक्षिणवर्णाः श्वेताः सन्ति पुनर्दक्षिणोर्वाप्योरन्तरेषु द्वी द्वौ रतिकरपर्वतो वर्तेते सर्वे रक्तवर्णाः इत्यर्थः ॥

[हिन्दी] वहां (अष्टम द्वीप में) नन्दीश्वर द्वीप के मध्य भाग में चारों दिशाओं में अंजनगिरि नाम के कृष्णवर्ण वाले चार पर्वत हैं । उन पर्वतों में प्रत्येक पर्वत की चारों दिशाओं में चार वावडियां हैं । उनमें से प्रत्येक वापिका के मध्य भाग में दहीके समान श्वेत रंग के दक्षिणमुख नाम के पर्वत हैं । प्रत्येक वापिकाओं के अन्तर में दो दो लाल रंग वाले रतिकर नामक पर्वत हैं ।

अष्ट द्वीप कौन २ से हैं?

इस तिर्यक लोक में जो जम्बूद्वीप प्रमुख असंख्याता द्वीप हैं, और लवण समुद्र प्रमुख असंख्याता समुद्र हैं । जिनमें से ८ ये हैं:—(१) जम्बूद्वीप (२) घातकीखण्ड (३) पुष्करवर् द्वीप (४) वारुणावर द्वीप (५) क्षीरवर द्वीप (६) घृणवर द्वीप (७) इक्षुवर द्वीप (८) नन्दीश्वर द्वीप.

[गु०] तयां आठमा नन्दीश्वर द्वीपना मध्य भागमां चारै दिशाओमां अंजनगिरि नामना काणा वर्षांना चार पर्वतो छे जे दरेकना उपर चारै दिशाओमां चार वावडीओ छे. तेमां प्रत्येक वावडीनी वरये दहीना जेवा सईह रंगना दक्षिणमुख नामना पर्वतो छे. वणी प्रत्येक वाप्ये वावडीओ वरये लालरंगना रतिकर नामना जे जे पर्वतो छे.

आठ द्वीप क्या क्या ?

आ तिरुछिञ्जिक्कमां लंपूद्वीप प्रमुथ् अस्संप्प्याता द्वीपा छे, अने लवल्लसमुद्र प्रमुथ् अस्संप्प्याता समुद्रो छे. जेमां आठ द्वीप आ प्रमाळु छे:-
(१) लंपूद्वीप, (२) घातकीअंड, (३) पुक्करद्वीप, (४) वारुल्लुवरद्वीप,
(५) क्षीरवरद्वीप, (६) धृतवरद्वीप, (७) नंदीश्वरद्वीप.

[सं०] एवं चैकैकाञ्जनगिरेः समन्तात् चत्वारो दधिमुख्वा अष्टौ च रतिकराः सन्ति । मीलने जाता द्विपञ्चाशत् गिरयः ते च पृथक् २ नामसंख्यया चत्वारोऽञ्जन-गिरयः (४) षोडश दधिमुखाः (१६) द्वात्रिंशद्रतिकराः (३२) तेषामुपर्येकैकं जिन-भवनमस्तीति द्विपञ्चाशजिनचैत्यानि सन्ति तेषु जिनचैत्येषु प्रत्येकं चतुर्विंशत्यधिकशतं जिनचिह्नानि सन्ति, सर्वेषां मिलनेऽष्टचत्वारिंशदधिकचतुःषष्टिशतानि जिनचिह्नानि भवन्ति (६४४८) ॥

[हिन्दी] इस प्रकार एक एक अंजनगिरिनाम पर्वत के आसपास चार चार दधिमुख और आठ आठ रतिकर पर्वत हैं। अंजनगिरि समेत प्रत्येक दिशा में तेरह तेरह पर्वत हैं। चारों दिशाओं को मिलाने से (५२) पर्वत होते हैं। चार अंजनगिरि, सोलह दधिमुख और बत्तीस रतिकर पर्वत कुल संख्या (५२) हैं। इन बावन पर्वतों के ऊपर एक २ जिनमन्दिर हैं। इन मन्दिरों में प्रत्येक एक सौ चौबीस (१२४) ऋषभ, चन्द्रानन, वारिषेण, वर्द्धमान आदि तीर्थंकरों की प्रतिमाएं हैं। बावनों मन्दिरों में प्रतिमाजी की संख्या [६४४८] छ हजार चार सौ अड़तालीस होती है।

“ प्रतिमाजी की अग्रमाहना उत्कृष्ट तो ५०० पांच सौ धनुष की हैं और छोटी सात हाथ की हैं। ये सब प्रतिमाएं रत्नमयी हैं। इनका विशेष वर्णन श्री ठाणांगजी सूत्र का चौथा ठाणा में बहुत किया हुआ है।

[गु०] आ प्रमाळु अेक अेक अंजनगिरि पर्वतनी आसपास आर आर दधिमुख अने आठ आठ रतिकर पर्वत छे. अंजनगिरि सङ्घित प्रत्येक दिशाअेमां तेर तेर पर्वतो छे. आरे दिशाअेमांता थछने कुल आवन पर्वतो छे. आर अंजनगिरि, सोण दधिमुख अने अत्रीश रतिकर पर्वत कुल आवन छे. आ आवनमां हरेकना उपर अेक अेक जिनालय छे. प्रत्येक जिनालयमां १२८ (अेकसे अेवीस) ऋषभ, अंद्रानन, वारिषेण, वर्द्धमान

आदि तीर्थं करोनी प्रतिमायां छे. अधाय जिनालयोना जिनायिपीनी संप्या छे हुअर, आरसो अउतालीस थाय छे.

सौथी भोटी प्रतिमान्नी अवगालना ५०० धनुष्यनी छे अने सौथी नानीनी सात लायनी छे. अधीय प्रतिमायां रत्नोनी छे. जेनुं विशेष वर्णुंन श्री ढाण्णांग सूत्रना थोथा ढाण्णाभां करवाभां आवेस छे.

[सं०] तानि च सर्वाण्यपि चैत्यानि चतुर्द्वाराणि शाश्वतानि प्रवर्तोरणादिभिर-
लंकृतानि अतिसुन्दराणि सन्ति, त देवेन्द्रा बहुदेवदेवीपरिवृताः प्रवर्द्धमानभावेनाष्टा-
द्विकामहोत्सवं कुर्वन्ति । जल-चन्दन-पुष्प-धूपायष्टविधद्रव्यैर्जिनभिम्बानि पूजयन्ति,
जिनगुणान् गायन्ति, स्तुवन्ति नाटकं च विदधति । इत्यमष्टदिनावधि महोत्सवं समाप्य
पुनः स्वस्थानं गच्छन्ति ॥

[हिन्दी] वे सारे जिनचैत्य चार चार दरवाजों वाले हैं । प्रत्येक मन्दिर
शाश्वत रहनेवाले प्रवर तोरणों आदि से अलंकृत हैं । ये शाश्वत जिनालय अत्यन्त
भव्य एवं सुन्दर हैं । वहाँ चौसठों इन्द्र बहुत से देवी और देवताओं के साथ बहती
हुई भावनाओं के साथ अष्टाद्विका महोत्सव करते हैं । इन दिनों में सब जल, चन्दन,
पुष्प, धूप आदि अष्टविध द्रव्यों से जिनभिम्बों की पूजा करते हैं । जिनेश्वर भगवान
के गुणों को गाते हैं, उनकी स्तुति करते हैं एवं वहाँ नाटक भी करते हैं ।
इस प्रकार आठ दिनों तक इस महोत्सव को करके फिर अपने अपने स्थान को
चले जाते हैं ॥

“इस प्रकार का उत्सव चौमासी तथा भगवान के कल्याणक प्रमुख का भी
करते हैं । प्रह बात श्री जीवाभिगम सूत्र तथा ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में कही है ॥”

[गु०] हरैक जिनालय आर आर दरवाजवाणा छे. शाश्वत रहैनारां
अने सुंदर तोरणोथी विभूषित छे. अं शाश्वत जिनभवनेो भव्य अने
सुंदरताथी युक्त छे. त्यां चौसठ हन्द्रो देव-देवीआना परिवार साथे
भावना-भक्तिथी भरपूर हृदयथी अष्टाद महोत्सव करे छे. अष्ट द्रव्योथी
जिनेन्द्र-पूजन करे छे. जिनेश्वर भगवानना गुणगान करे छे. भावभरी
स्तुति अने नृत्य पेश करे छे. आ प्रभाणि आठे दिवस उत्सव करीने हरैक
भातपीताना स्थाने भय छे.

आवे उत्सव औभासी अने तीर्थंकर भगवतीना कल्याणक प्रमुख प्रसंगोमां पशु करे छे. आ वात श्री छ्वाभिगम सूत्र तथा ज्ञानासूत्रमां पशु कहेली छे.

[सं०] एवं श्रावकैरपि श्रीमत्तीर्थंकरप्रकाशितेऽस्मिन् पर्वणि समागते धर्मकर्मणि यत्नो विधेयः तथा चास्मिन् पर्वणि श्रावकाणां कृत्यान्याह :—

[हिन्दी] इस प्रकार से श्रावकों में श्रीमत्तीर्थंकर द्वारा प्रकाशित इस पर्युषण पर्व के आने पर धर्म कर्म के सम्पादन करने में प्रयत्न करना चाहिये ।

और इस पर्व में श्रावकों के क्या कर्तव्य कृत्य हैं, उन्हें बताते हैं:—

[सु०] आ रीते श्रावकोऽपि पशु श्रीमत् तीर्थंकर द्वारा कहेवायेले आ पर्युषण पर्व आवे तयारे धर्म-कर्मना संपादनमां विशेष प्रयत्न करवे जेहो जेहो.

आ पर्वमां श्रावकोऽपि शुं शुं धर्म-कर्म करवां जेहो जेहो ते कहुं छुं:—

पर्युषण पर्व :—

[हिन्दी] “यह पर्युषण पर्व सब पर्वों में बड़ा पर्व है । इसके बराबर दूसरा कोई भी पर्व नहीं है, इस लिये विशेष करके प्रमाद का त्याग कर धर्म तथा धर्म की उन्नति करना चाहिये, क्योंकि यह मनुष्य जन्म, उत्तम जाति, उत्तम कुल, उत्तम निर्गन्धों का बताया धर्म बारम्बार मिलना कठिन है । भले पुण्यों के योग से यह तन मिला है तो अब व्यर्थ के प्रमाद में यह जीवन नहीं बिताना चाहिये । इस दफे हार गये तो फिर चौरासी लक्ष जीवापोनियों में भ्रमण करते करते ठिकाना भी मालूम नहीं होगा ।

इस लिये इस पर्व में तो अवश्य धर्म में चित्त लगाकर अपने मनुष्य अवतार को सफल कर लेना चाहिये ॥

[सु०] आ पर्युषण पर्व जेहो पर्वोमां मोहुं छे. आना जेहुं मोहुं जीवुं जेहो पर्व नथी तेमां विशेष करीने प्रमादना त्याग करीने श्रावकोऽपि धर्म तथा धर्मनी उन्नति करवी जेहो जेहो, कारण के आ मनुष्य जन्म, उत्तम जाति, उत्तम कुल अने उत्तम निर्गन्धोना कहेवायेले धर्म बारम्बार मजवे मुश्किल छे. सारा पुण्योना योगथी आ मनुष्य शरीर

मार्गुं छे तो हुवे आणसभां आ छवन वितावी हेतुं न लेछिये. आ वपते छारी गया तो पछी थारासी साथ योनिओमां भटकतां भटकतां कथांय पत्तो पणु नहीं लागे.

भाटे, आ पर्वमां बडर धर्ममां यित्त परोत्रीने आपणु मनुष्य अवतार सकण करी लेवे लेछिये.

[हिन्दी] इस संसार में सभी मानव, धर्म धर्म ऐसा कहते हैं परन्तु धर्म क्या वस्तु है? इसे पहिचानना व जानना बड़ा कठिन है। पेट भरने के लिए पाखंडी लोग धर्म की प्ररूपणा (अर्थ) करते हैं, किन्तु उन पाखंडियों का कथन सब असत्य है क्योंकि उन्हें धर्मका मार्ग भी नहीं मिला है। धर्म तो सच्चा वही कहला सकता है जिस में हिसादिक आश्रवों का त्याग हो, जो केवलियों के वचनों से विरुद्ध न हो। " देव अरिहंत, गुरु निर्गुण, केवलिभाषित दयामूल धर्म, इन तीनों तत्त्वों को अन्तःकरण से पालन करने वालें ही श्रावक, सही अर्थों में श्रावक है। "

[गु०] दुनियांमां सौ धर्म, धर्म ओम कहे छे पणु धर्म शुं चील छे तेने ओणओवे अने लणुवे ओ अहु मुश्केल वस्तु छे. पाणुं डी डोको पोतातुं पेट भरवा भाटे धर्मना बुही बुही रीते अर्थो करे छे, परंतु आ पाणुं डीओतुं कहेतुं अहुं असत्य छे; अरणु के तेमने धर्मना मार्ग पणु साथ लाग्यो नथी. साथी धर्म ओ कहेवाय जेमां हिंसा वगेरे आश्रवोना त्याग होय अने जे केवणीओना वचनोथी विरुद्ध न होय. " देव अरिहंत, गुरु-निर्गुण, अने केवणीओमे कहेले दया जेना भूणमां छे ओवे धर्म-आ तणु तत्त्वोतुं अंतःकरणपूर्वक पालन करनारा श्रावको व अरा अर्थमां श्रावको छे. "

आश्रव-कषाय-रोधः कर्तव्यः श्रावकैः शुभाचारैः ।

सामायिक-जिनपूजा-तपोविधानादि-कृत्यपरैः ॥ १ ॥

[सं०] तत्राश्रवाः पञ्च ते चामी,—प्राणातिपात-मृषावादाऽदत्तादान-मैथुन-परि-ग्रहास्तेषां रोधो निरोधः अर्थात्तत्यागः कर्तव्यः ।

[हिन्दी] आश्रव कषायों को रोकना चाहिये। सामायिक, जिनपूजा, तप के विधानादि कृत्य करने में शुभ आचरण से युक्त श्रावकों को तत्पर रहना चाहिये।

आश्रव पांच हैं, वे हैं....(१) प्राणातिपात (२) मृषावाद (३) अदत्तादान (४) मैथुन (५) परिग्रह; इन पांचो का रोष अर्थात् त्याग करना चाहिये।

[शु०] आश्रव—कपायेने रोडवा लेईये. सामायिक, बिनपूज, अने तपना विधानो वगेरे शुभकृत्यामां सारा आश्रवणा आवडोये उभेशां तत्पर रडेवुं लेईये. आश्रव पांच छे. (१) प्राणातिपात, (२) मृषावाद, (३) अदत्तादान, (४) मैथुन, (५) परिग्रह. आ पांचयेनो रोष अटले त्याग करवो लेईये.

[सं०] एतावता प्रथमं द्वीन्द्रियादयो जीवास्तेषां विराधना श्रावकैर्वज्यां सर्वदानेषु अभयदानं श्रेष्ठमेव, “दायाण विद्वममयप्पहाणमिति” श्री सुयगडांगे उक्तम् ॥ अन्यत्राप्युक्तं च:—

[हिन्दी] इन सब में प्रथम द्वि इन्द्रिय आदि जीवों की विराधना (उन्हें उपयोग सहित मारना) श्रावकों को छोड़ देना चाहिए, कारण कि “सभी दानों में अभयदान ही श्रेष्ठ है, ऐसा “सुयगडांगजी सूत्र में कहा है” तथा अन्यत्र भी कहा है।

“प्राणातिपात के अन्तर्गत दो इन्द्रियों वाले, तीन इन्द्रियों वाले, चार इन्द्रियों वाले, पांच इन्द्रियों वाले व त्रय जीव, और एक इन्द्रिय वाले पृथिव्यादि स्फटिक-मणिरत्न प्रमुख जीव, इनको विना अपराध के मारने का श्रावकों को त्याग करना चाहिये। और फिर पर्युषण महापर्व में तो विशेष करके उपयोग सहित जीव मारने का त्याग करना चाहिये, क्योंकि दूसरे मतों में भी अभयदान को श्रेष्ठ माना है ॥

[शु०] आ अथांमां सौथी पडेवुं द्वि-इन्द्रिय वगेरे लोवानी विराधना (अने उपयोग साथे मारवा) श्रावडोये छोडी देवी लेईये. कारणु के “अथा दानोमां अभयदान न श्रेष्ठ छे” अवे सुयगडांगे सूत्रमां कलुं छे. तथा नीले पणु कलुं छे.

“प्राणातिपातमां ये इन्द्रियवाणा, त्रय इन्द्रियवाणा, चार इन्द्रियवाणा, पांच इन्द्रियवाणा अने त्रय लोवो तथा एक इन्द्रियवाणा पृथ्वी वगेरे स्फटिक मणिरत्न प्रमुख लोवो-अभने विना अपराध मारवानो श्रावडोये त्याग करवो लेईये. अने वणी पर्युषण महापर्वमां

तो आस करीने उपयोग सहित छव भारवानो त्याग करवो जेठो;
कारणु के पील मतोमां पणु अभयदानने श्रेष्ठ मान्युं छे.

[सं०] दीयते म्रियमाणस्य, कोटिर्जीवितमेव च ।

धनं कोटिं न गृहीयात्, सर्वो जीवितुमिच्छति ॥ १ ॥

अपि च:—

यो दद्यात्काञ्चनं मेरुं कृत्स्नां चापि वसुन्धराम् ।

एकस्य जीवितं दद्यान्नहि तुल्यमर्हिसया ॥ २ ॥

[हिन्दी] मरने वाले मनुष्य को कोई व्यक्ति करोड़ रुपये की आजीविका दे देवे तो भी वह प्राणी उसे ग्रहण करना नहीं चाहेगा क्यों कि सब प्राणियों को अपना प्राण प्यारा है मरने के बाद वह धन किस काम आवेगा ? । ”

श्रीकृष्ण युधिष्ठिर को कहते हैं कि हे युधिष्ठिर ! एक मनुष्य मेरु पर्वत के बराबर सोना (सुवर्ण) किसी को दान में देवे और एक सम्पूर्ण पृथ्वी का दान देवे, और एक मनुष्य किसी भी प्राणी को अभयदान देवे तो भी प्रथम के दोनों दानी अभयदान देने वाले के आगे हीन हैं, क्यों कि इस संसार में अहिंसा के तुल्य कुछ भी नहीं है ॥ २ ॥

[शु०] भरवावाणा मनुष्यने कोठ करेउ उपियानी आलविका आपी हे, तो पणु ते तेने लेवानी धञ्छि नही करे; केम के सोने गोतानो प्राणु सौथी वलातो छे. मर्या पछी ते धन शं काममां आवरी ? ”

श्रीकृष्ण युधिष्ठिरने कहे छे के हे युधिष्ठिर, ! कोठ माणुस मेरु पर्वत जेठलुं सोनु कोठने दानमां हे, कोठ आपी पृथ्वी दानमां आपे अने अेक माणुस कोठ प्राणुने अभयदान आपे तो पहेला अन्ने दानी अभयदान आपवावाणा माणुस करतां नीया छे. कारणु के आ संसारमां अहिंसा जेवुं श्रेष्ठ कांठ पणु नथी. २.

[हिन्दी] “ इस संसार में मरने (मृत्यु) के समान भय नहीं है, पैदल चलने के समान दुःख नहीं है, भूखों मरने के समान तकलीफ (वेदना) नहीं है, दरिद्रता के समान मानहीनपना नहीं है तथा संसार के सभी प्राणी सुख के अभिलाषी हैं, कोई भी दुःख का अभिलाषी नहीं होता है ।

अतः श्रावकों को चाहिये कि वे कुव्यापार नहीं करें, विना छाने पानी को काम में न लें, इस पर्युषण पर्व में तो खास करके हिंसा के कार्य न करें, केवल भोजन के बिना काम नहीं चलता अतः कार्य, उपयोगपूर्वक खाने जितना ही आरंभ करें। किन्तु ज्यादा आरंभ नहीं करें। उसमें भी कंठे (छांणा) लकड़ी देख के जीवजन्तु रहित काम में लें। चूल्हे को बर्तनों के स्थान को अच्छी तरह देख लें, जल के बर्तन खुले न रखें, चंदोबा (वितान) बांधे विना रसोई इत्यादि कार्य न करें, इस तरह जीवदया का पालन करते हुए इस भव में ही सुखप्रद हों तो परभव में सुखप्रद हों। इस में क्या आश्चर्य? अर्थात् दूसरे भव में तो सुख देने वाले होंगे ही।

[गु०] आ संसारमां मृत्यु ज्येो कोष्ठ भय नथी, पगे आलवा ज्येवुं कोष्ठ दुःख नथी, भूपे भरवा ज्येवी कोष्ठ वेदना नथी, अने गरीभाष्ठ ज्येवुं कोष्ठ अपमानकारक नथी. संसारमां सौ प्राणी सुप्पना अभिलाषी छे. कोष्ठ दुःख छच्छतुं नथी.

अतला भाटे श्रावकोअे कोष्ठ विरुद्ध आचरणु न करवुं ज्येअे; गज्या विनाना प्राणीना उपयोग न करवो ज्येअेअे. आ पर्युषणु पर्वमां तो भास करीने हिंसा थाय ज्येवुं काम कोष्ठ न करे. भाणुसने भोजन विना आलतुं नथी. तेथी उपयोग ज्येवुं न रांधे पणु वधारे रांधे नथी. अेमां छाणां, लाकडां वगेरे भास तपासीने ज्येवुं वगरनांनो उपयोग करे. यूलो अने वासणु राभवानी जग्या परापर ज्येअे ले. प्राणीनां वासणु उधाडां न राप्पे. यूलाना उपरना भागमां उज्जेय (अंहरवा) भांध्या सिवाय रसोई न करे; आ सीते ज्येवुं पालन करतां करतां आ भवमां सुप्प भेजवे; तो पछी परभवमां सुप्प भणे तेमां शुं आश्चर्य? मतलप के ज्येवुं कामो परभवमां सुप्प आपवाणां अवश्य थरो न.

अतोऽभयदानप्राधान्यख्यापनार्थं कथानकमुच्यते । तथाहि :—

[सं०] वसन्तपुरेऽरिदमनो राजा तस्य पञ्च राष्ट्रस्तासु चैका दुर्भगा चतस्रोऽत्यन्त-
बलभाः । एकदा चतुर्वधसमेतो राजा निजप्रासादगवाक्षस्थो नानाविधक्रीडाविलासं

कुर्वन्स्तिष्ठति स्म । तस्मिन्नवसरे एकद्वचौरो राजमार्गेण नीयमानो राज्ञा सपत्नी-
केन दृष्टः ।

[हिन्दी] अब अभयदान की प्रधानता बतानेवाला कथानक कहते हैं :—
वसन्तपुर में अरिदमन नाम का एक राजा था । उसके पांच रानियां थीं । उनमें से
एक राजा द्वारा मानित नहीं थी । चार रानियां राजा की स्त्रिय प्यारी थीं । एक
दिन चारों रानियों सहित राजा अपने महल में नाना प्रकार की क्रीडाएं करता हुआ
अपने महल के झरोखे के पास बैठा था । उसी अवसर में राजमार्ग से जाते हुए एक
चोर को राजाने अपनी पत्नियों के साथ देखा ।

[शु०] इवे अभयदान श्रेष्ठ छे अयुं अतावती अेक वात कहुं छुं.

वसन्तपुरमां अरिदमन नामने अेक राज् उतो. तेने पांच राणीअे
उती. तेमांथी अेक राणी अलुभानीती उती. चार राणीअे राजने पूज
वहाली उती. अेक दिवस राज् चारे राणीअे साथे पोताना भईलना
अडुभांमां अेठे अेठे आनंद-प्रमोद करतो उतो, तेवांमां राजमार्ग उपरथी
पसार थता अेक चोरने अेथे.

[सं०] सच कीदशः—कण्ठन्यस्त-रक्त-करवीरमालो रक्त-वस्त्र-परिधानो, रक्त
चन्दनानुलिप्त-गात्रः पुरस्ताद्वाचमान-वध्य-दिडिमः इत्थं विविध-विडम्बनाभिर्विड-
म्बयमानं तं चौरं दृष्ट्वा राज्ञिभिः श्रुं, किमकार्यमनेनाकारीति ॥

[हिन्दी] उस चोर के कण्ठ में लाल कणेर के फूलों की माला थी, उस के वस्त्र
भी लाल थे, उसके शरीर पर लाल चन्दन का लेप लगा हुआ था । वह कठिन
रज्जुओं से बंधा हुआ था, उसके आगे एक राजपुरुष दिडोरा पीटता हुआ चल रहा
था । (वह दिडोरेवाला उच्च स्वर में कह रहा था:—देखो रे लोकों! “ जा कोई भी
उस की तरह चोरी करेगा उसका यही हाल होगा ।)”

इस तरह की तकलीफ व अपमान पाता हुआ वह चोर वध्य स्थल को ओर
ले जाया रहा था । ऐसे चोर को देख कर राजा की इन चारों रानियोंने पूछा,
हे महाराज ! इसने क्या अकृत्य किया है ?

[सु०] એ ચોરના ગળામાં લાલ કણેરના કુંડલી માળા હતી, એનાં વસ્ત્રો પણ લાલ હતાં અને એના શરીર ઉપર લાલ ચંદનનો લેપ કરેલો હતો. તેને કઠણ દોરડાએથી બાંધ્યો હતો અને તેની આગળ એક રાજકર્મચારી ઢંઢેરો પીઠતો ચાલતો હતો અને ઊંચે સ્વરે લોકોને કહેતો હતો કે “જે કોઈ આની જેમ ચોરી કરશે તેના આવા હાલ થશે.”

આ પ્રમાણે તકલીફ અને અપમાન પામતા તે ચોરને વધસ્થળે લઈ જવામાં આવતો હતો. આવા ચોરને બેઠાને રાજની એ ચારે રાણીઓએ પૂછ્યું “હે મહારાજ! આ માણસે શું ગુન્હો કર્યો છે?”

[સં०] तदा एकेन राजपुरुषेण तासां पुरः कथितं परद्रव्यापहारेण राजविरुद्ध-
मनेन कृतमिति ततः सञ्जातकृपया एकया राज्ञ्या विव्रतो राजा । स्वामिन् ! यो
भवता मह्यं प्राण्वरः प्रतिपन्नः सोऽधुना दीयतां येनाहमेकदिनमुपकरोमि चौरम् । तदा
कथंचिद्राज्ञा प्रतिपन्नं च तद्वचः ।

[हिन्दी] तब एक राजपुरुषने बताया कि इस चोरने दूसरों के धन को चुराया है, इस तरह राजा के नियमों के विरुद्ध करने से यह दण्डित हुआ है । (प्राणदण्ड के लिये ले जाया रहा है) तब एक रानी के मन में यह सुन कर दया उत्पन्न हुई । उसने राजा से निवेदन किया कि हे स्वामी ! आपने मुझे पहले जो एक वर देने की कड़ा था वह अब आप मुझे दें, ताकि मैं इस चोर का एक दिन उपकार करूं । राजाने किसी तरह उस रानी का कहना मान लिया । (उस दिन वह चोर वधस्थल की ओर नहीं गया और राजा के वचन से पहली रानी के प्रासाद में उपस्थित हुआ) ॥

[सु०] ત્યારે એક રાજપુરુષે કહ્યું કે “આ માણસે બીજાનું ધન ચોર્યું છે. આથી રાજ્યના નિયમોની વિરુદ્ધનું કામ કરવા માટે તેને સજા કરવામાં આવી છે, ને મૃત્યુદંડ દેવા માટે તેને વધસ્થળે લઈ જવામાં આવે છે.” આ સાંભળીને એક રાણીના મનમાં દયા ઉત્પન્ન થઈ. તેણે રાજને પ્રાર્થના કરી કે—હે સ્વામી! આપે મને પહેલાં એક વરદાન માગવાનું કહેવું તે આજે હું માગું છું: “આ ચોરને આજનો દિવસ મુક્ત કરો, હું તેને કાંઈક આપવા માગું છું.” રાજ્યે તે રાણીનું

कहेतुं भानी वीधुं अने राजनी आज्ञाधी ते योरने वधस्थल पर न
वध जातां राणीना भडेलभां डण्डर करवाभां आव्यो.

[सं०] ततस्तया स्वानादि-पुरस्सरं दीनार-सहस्र-व्ययेन विविध-वस्त्रालङ्कारैरलं-
कृतः स चौरः, ततो द्वितीयया द्वितीयदिने राजानं विज्ञप्य दीनार-दश-सहस्र-
व्ययेन स सत्कृतः, ततस्तृतीयया तृतीयदिने दीनार-लक्ष-व्ययेन स च उपचरितः ।
ततश्चतुर्थया दीनार-कोटि-व्ययेन चतुर्थो दिवसोऽतिवाहितः ॥

[हिन्दी] उसके बाद पहली रानीने स्नान आदि करवा के चोर को एक हजार
स्वर्णमुद्रा प्रदान कर नाना प्रकार के वस्त्र और अलंकारों से सत्कृत किया । इसी तरह
दूसरे दिन दूसरी रानीने चोर को दश हजार स्वर्णमुद्रा प्रदान कर सत्कृत किया ।
ठीक इसी तरह तीसरे दिन तीसरी रानीने एक लाख स्वर्णमुद्राएँ व्यय कर उस
चोर को उपकृत किया । फिर चौथे दिन चौथी रानीने एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ खर्च
कर उस चोर पर दया दिखाई ।

[गु०] राणीअे ते योरने स्नान वगेरे करावीने अेक डण्डर सोना-
भडोरोनुं दान क्युं अने जुही जुही जतनां वस्त्रो तथा अलंकारोथी
तेनुं स्वागत क्युं. अे न प्रभाणे पीणे दिवसे पीछ राणीअे योरने
दस डण्डर सोनाभडोरो आपीने तेनुं स्वागत क्युं. त्रीणे दिवसे त्रीछ
राणीअे तेने अेक लाख सोनाभडोरो आपी. थोथा दिवसे थोथी राणीअे
अेक करोड सोनाभडोरो आपीने ते योर डपर दया जतावी.

[सं०] ततः पञ्चम्या दुर्भगाया राश्या पञ्चमदिने राज्ञः समीपमागत्य विनय-
नम्रतया दीनवचसा नृपो विज्ञप्तः । स्वामिन् ! मम दुर्भगाया उपरि भवदीया तादृशी
कृपा नास्ति तेन मया कदापि भवन्तो न याचिताः । अधुनाऽस्य चौरस्य जीवितदानं
मया त्वं याच्यसे तदा राज्ञापि जीवितप्रदानपूर्वकं चौरोऽस्यै ब्रदत्तोऽनया च तं चौरं
स्वगृहे नीत्वा सामान्यभोजनेन भोजयित्वा कथितं "मया तुभ्यं जीवितं प्रदत्तं पुनः
चौर्यं मा कार्षीः ॥

[हिन्दी] तब पांचवी दुर्भंगा रानीने पांचवे दिन राजा के पास आकर सविनय कहा, "हे स्वामी ! मुझ अभागिन पर आपकी वैसी कृपा नहीं है, अतः मैंने कभी भी आप से चर नहीं प्राप्त किया। अब इस चोर को "जीवनदान" देने की मेरी प्रार्थना है। राजाने भी चोर को 'जीवनदान' देने की उसकी प्रार्थना स्वीकार की। और वह चोर रानी को सोंप दिया। रानी उसे अपने महल में ले गई, उसे उसने सामान्य भोजन कराकर कहा, हे चोर ! मैंने तुझे जीवन से अभयदान दिलाया है, अब तुम्हें मृत्यु का भय नहीं है, अब से तुम फिर कभी भी चोरी का काम मत करना।

[गु०] पांचमे दिवसे पेत्री अभागी पांचमी राणीअे राजनी पासे जधने सविनय प्रार्थना करी: "हे स्वामी! मारी अभागिणी पर आपनी अेवी कोर कृपा अरु नथी तेथी मने कोर परदान भउचुं नथी. पशु आ चोरने आप "अवनदान" आपो अेवी मारी प्रार्थना छे-तेने आप छोडी भूके." राजअे ते चोरने अवनदान देवानी राणीनी प्रार्थनाने स्वीकार अर्थे अने ते चोरने राणीने सोंपी दीथी. राणी अने पेताना भडेअमां अरु गअ. तेने तेअे सामान्य भोजन करावीने पछी अहुं: "हे चोर! अें तने अवनदान अपाअुं छे. अवे तने मृत्युने कोरुं अय नथी, माटे अवेथी तुं अदी चोरी करीश नहि." "

[सं०] ततोऽसौ दृष्टस्तदा सपत्नीभिर्हसितं नास्य त्वया किञ्चित्सुखकारि कृतं तासां च परस्परं बहूपकारविषये विवादे संजाते राज्ञा स एव चौरः समाह्वय एष्टोऽहो कया तव बहूपकारः कृतः ? इति ।

[हिन्दी] इस से वह चोर प्रसन्न हो घर चला गया। इसके बाद उस रानी की सपत्नियोंने पांचवी रानी का मजाक उड़ाया। उन्होंने कहा कि तुमने हमारे बराबर उस चोर का कोई उपकार नहीं किया। हम से वह चोर ज्यादा उपकृत हुआ है। इस तरह सबसे ज्यादा उस चोर पर किसने उपकार किया? इस विषय पर उन पांचों में वादविवाद हुआ। इस पर राजाने उस चोर को ही निर्णय के लिये बुलाया। राजाने चोर से पूछा, बताओ! इन पांचों रानियों में से सबसे अधिक तुम्हारा उपकार किसने किया?

[शु०] आश्री ते चोर प्रसन्न धर्मे घेर आल्यो गयो. त्यारपछी पांचमी राणीनी शोकयोअमे मणीने तेनी मज्जक उडावी. तेमणे कळुं के तं चोर उपर अमारा जेवो उपकार नथी कर्यो, अमे ज तेनी उपर मोटे उपकार कर्यो छे. आवी शते कोणे सौथी मोटे उपकार कर्यो तेनी अ पांचे राणीयो वच्ये कर्यो अने वादविवाद उलो थयो. आथी राज्जये ते चोरने ज तेना निर्णय मोटे जालाव्यो. राज्जये चोरने पूछ्युं: “आ पांचे राणीयोमां सौथी वधारे उपकार तारी उपर कोणे कर्यो छे?”

[सं०] तेनाप्यभाणि भो महाराज ! चतुरो दिनान् यावन्मरणभयभीतेन मया न किञ्चित्स्नानभोजनादि सुखमज्ञायि, अद्य पञ्चमेऽहनि अस्थाः पञ्चम्या राश्या मुखादभयदानाकर्णनेन परसुखमनुभूयते । अत एतस्या उपकारः सर्वतो महान् । एतच्चौरवचः श्रुत्वा सा पट्टराज्ञी कृता सर्वैरपि सा प्रशंसितोऽतः सर्वदानानामभयदानं श्रेष्ठमिति ज्ञापितम् ॥ अन्यदप्युक्तम् :—

[हिन्दी] उस चोरने कहा, “हे महाराज ! चार दिन तक तो मुझे मृत्यु का भय बना रहा, इस लिये मौत के डर से मैंने स्नान-भोजनादि के सुख को जाना तक नहीं, आज पांचवे दिन इस पांचवी रानी के मुख से ‘अभयदान’ के वचन सुनकर मुझे सबसे बड़े सुख का अनुभव हुआ, अतः मैं तो इस रानी का सब से बड़ा उपकार मानता हूँ ।

चोर के वचन सुन कर राजा भी हर्षित हुआ और उसने उस पांचवी रानी को उस दिन से पट्टरानी निपुल किया । सब रानियोंने भी उनकी प्रशंसा की, इस लिये कहा जाता है कि सब दानों में ‘अभयदान’ ही प्रमुख है । और भी कहा है ।

[शु०] ते चोरि कळुं: “महाराज ! चार दिवस सुधी तो मने मृत्युनेो भय रक्षा कर्यो तेथी मोतना उरथी स्नान, भोजन वगेरेतुं सुभ मने जे आपवाभां आव्युं ते हुं माणी शक्यो नर्ही. पांचमे दिवसे ज्यारे पांचमी राणीने सुणथी अलयदाननुं वचन सांभळ्युं त्यारे मने सौथी वधारे सुभ थ्युं तेथी हुं सौथी वधारे तो आ पांचमी राणीने उपकार मानुं छुं.”

थारनुं यथन सांभजीने रात्न पणु प्रसन्न थयो अने ते दिवसथी तेणे पांचमी राणीने पटराणीपदे स्थापी. भील राणीआय्ये पणु तेनी प्रशंसा करी. तेथी न कडेवाय छे के अधा दानोभां 'अभयदान' श्रेष्ठ छे. वणी पणु कहुं छे के—

[सं०] कथमुत्पद्यते धर्मः, कथं धर्मो विवर्धते ।
 कथं संस्थाप्यते धर्मः, कथं धर्मो विनश्यति ॥ १ ॥
 सत्येनोत्पद्यते धर्मो दया-दानेन वर्धते ।
 क्षमायाः स्थाप्यते धर्मः क्रोधलोभाद्दिनश्यति ॥ २ ॥
 अहिंसा सत्यमस्तेय-त्यागो मैथुनवर्जनम् ।
 पञ्चस्वेषु धर्मेषु, सर्वे धर्माः प्रतिष्ठिताः ॥ ३ ॥

[हिन्दी] श्री कृष्णजी से युधिष्ठिरनें प्रश्न किया कि धर्म कैसे उत्पन्न होता है? धर्म कैसे वृद्धि को प्राप्त होता है, और वह कैसे स्थापित किया जाता है, तथा वह कैसे नष्ट हो जाता है? ॥ १ ॥ इसके उत्तर में स्वयं श्री कृष्ण कहते हैं कि:—हे युधिष्ठिर! यह धर्म सत्य भाषण से उत्पन्न होता है, दया और दान आदि कर्मों के करने से बढ़ता है, क्षमा धर्म के धारण करने से यह चिर स्थापित्व को प्राप्त होता है, क्रोध और लोभादि की अभिवृद्धि से नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, त्याग और मैथुन का वर्जन इन पांच बातों में सारे धर्म प्रतिष्ठित होते हैं। अतः मनुष्यों को चाहिये कि वे (१) जीवदया का पालन करें। (२) सत्य का जीवन में आचरण व व्यवहार करें। (३) चोर कार्य कदापि न करें। (४) परस्त्रीसेवन कर्म का सर्वथा त्याग करें। और (५) परिग्रह की ममता न करें ॥

[शु०] युधिष्ठिरे श्रीकृष्णने प्रश्न पूछयो के “धर्म केवी रीते उत्पन्न थाय छे? धर्म केम वृद्धि पाये छे तथा ते केवी रीते स्थापित थाय छे तथा केवी रीते नष्ट थाय छे?”

आना उत्तरभां स्वयं श्रीकृष्णु कहे छे के, “हे यधिष्ठिर! धर्म सत्यभाषणथी उत्पन्न थाय छे, दया अने दान वगेरे कर्मथी वधे छे, क्षमाधर्मने धारणु करवाथी ते स्थायी थाय छे अने क्रोध, लोभ वगेरेनी अभिवृद्धिथी नष्ट थध जय छे.” ॥ २ ॥

અહિંસા, સત્ય, અસ્તેય, ભોગોનો ત્યાગ અને મૈથુનનો ત્યાગ આ પાંચ વાતોમાં બધા ધર્મ પ્રતિષ્ઠિત થયેલા છે. માટે મનુષ્યોએ (૧) જીવ-દયાનું પાલન કરવું (૨) સત્યનું જીવનમાં આચરણ અને સ્વહાર કરવો (૩) ચેારી કદાપિ ન કરવી (૪) પરસ્ત્રીસેવનનો સર્વથા ત્યાગ કરવો, અને (૫) પરિગ્રહની મમતા ન કરવી.

[સં૦] જીવાનાં રક્ષણં શ્રેષ્ઠં, જીવા જીવિતકાંક્ષિણઃ ।
તસ્માત્ સમસ્તદાનેભ્યોઽભયદાન પ્રણયતે ॥ ૪ ॥
અહિસાલક્ષણો ધર્મઃ, અધર્મઃ પ્રાણિનાં વધઃ ।
તસ્માદ્દર્માર્થિભિર્લોકૈઃ, કર્તવ્યા પ્રાણિનાં દયા ॥ ૫ ॥

[હિન્દી] ફિર માર્કણ્ડેય પુરાણ મેં કહા હૈ કિ :—

જીવોં કી રક્ષા કરના મલા હૈ, ક્યોં કિ સવ પ્રાણી જીને કે અમિલાપી હૈં, હસે અભયદાન સવ સે શ્રેષ્ઠ હૈ ॥ ૪ ॥ અહિંસા હી ધર્મ કા લક્ષણ હૈં જીવ કો મારના યહી અધર્મ હૈ, હસ લિયે જિન્હે ધર્મ પાલને કી ઇચ્છા હોં, ઉન્હેં જીવોં કી દયા અવશ્ય પાલના ચાહિયે ॥ ૫ ॥

[ગુ૦] વળી, માર્કંડેય પુરાણમાં કહ્યું છે કે :—

“જીવોની રક્ષા કરવી એ સારું છે, કારણ કે બધા પ્રાણીઓ જીવવાની ઇચ્છાવાળા હોય છે. માટે જ અભયદાન સૌથી શ્રેષ્ઠ છે. ॥ ૪ ॥

અહિંસા જ ધર્મનું લક્ષણ છે. જીવોને મારવા એ અધર્મ છે. એટલા માટે જેને ધર્મ પાળવાની ઇચ્છા છે તેમણે જીવો ઉપર દયા અવશ્ય કરવી જોઈએ. ॥ ૫ ॥

[સં૦] કપિલાનાં સહસ્રાણિ, યો દ્વિજેભ્યઃ પ્રયચ્છતિ ।
એકસ્ય જીવિતં દદાન્ન ચ તુલ્યં યુધિષ્ઠિર ! ॥ ૬ ॥
યદમિદં તપસ્તપ્તં, તીર્થસેવા તથા શ્રુતમ્ ।
સર્વેઽપ્યભયદાનસ્ય કલા નાર્હન્તિ વોદશીમ્ ॥ ૭ ॥

[हिन्दी] हे युधिष्ठिर ! हजारों कपिला गौएँ ब्राह्मणों को दान देने का फल इतना नहीं है, जितना कि किसी भी एक भी प्राणी को जीवितदान देने का है ॥ ६ ॥ खूब इच्छानुसार किया गया तप, तीर्थभ्रमण व तीर्थसेवन, वेद आदि शास्त्रों का खूब पठन, ये सब वस्तुएँ अभयदान के पुण्य की सोलहवीं कलाकी भी बराबरी नहीं कर सकती हैं। अर्थात् इन तपादि कार्यों का फल अभयदान के पुण्य के आगे तुच्छ है ॥ ७ ॥

[सु०] " हे युधिष्ठिर ! हजारों कपिला गौयानुं ब्राह्मणाने दान करवाथी जेटानुं इण भणतुं नथी तेजुं कोऽपि एक प्राणुंने ज्वनदान देवाथी भणे छे ॥ ६ ॥ भूय इच्छानुसार करेजुं तप, तीर्थयात्रा अने तीर्थसेवन, वेद वगैरे शास्त्रोतुं अध्ययन-आ अधी वस्तुओ अभयदानना पुण्यनी सोणभी कणानी पणु परोपरी करी शकतां नथी, अटवे के आ अधां तपोनुं पुण्य अभयदानना पुण्य आगण तुच्छ छे ॥ ७ ॥

[सं०] हेम-धेनु-धरादीनां, दातारः सुलभा भुवि ।
दुर्लभः पुरुषो लोके, यः प्राणिव्यभयप्रदः ॥ ८ ॥
सप्तद्रापां सरत्नां च, दद्यात् मेरुं च काञ्चनम् ।
यस्य जीवदया नास्ति, सर्वमेतन्निरर्थकम् ॥ ९ ॥

[हिन्दी] इस संसार में सुवर्ण, गाय और पृथ्वी को दान देने वाले लोग सरत्ना से मिल सकते हैं, किन्तु प्राणियों को अभयदान देने वाला व्यक्ति मिलना कठिन है ॥ ८ ॥

चाहे कोई सात द्वीप रत्नों से भर कर दान में दे दे, सोने का मेरुपर्वत दान में दे दे किन्तु जिसके चित्त में दया न हो, उसके वे सब दान निरर्थक हैं ॥ ९ ॥

विशेषः-भारत में भी कहा है। (यह शांति पर्व में कहा है) कि मनुष्य को त्याग, भोग और उसकी शोभा की वृद्धि इत्यादि सारे कार्य 'अभयदान' से ही सफल होते हैं ॥

[सु०] आ संसारमां सोनुं, गाय अने पृथ्वीतुं दान करवावाणा दोडो सरणताथी भणी शके छे, पणु प्राणीओने अभयदान देनार व्यक्ति भणवी कठणु छे ॥ ८ ॥

बड़े कोर्छ सात पेट रत्नोथी बरीने दानमां दछि हे, सोनानो मेरुपर्वत दानमां दछि हे, पशु जेना चित्तमां द्या न डोय अनां अे अथां दान निरर्थक छे. (आ शान्तिपर्वमां कहुं छे.)

महाभारतमां पशु कहुं छे हे-‘भनुष्यता त्याग, भोग अने शोभानी पुक्ति वगेरे अथां कार्य ‘अभयदान’थी न सङ्ग थाय छे.

[सं०] अहिंसा परमो धर्म-स्तथाऽहिंसा परं तपः ।

अहिंसा परमं ज्ञानं, अहिंसा परमं पदम् ॥ १० ॥

अहिंसा परमं दानं, अहिंसा परमो दमः ।

अहिंसा परमो यज्ञ-स्तथाऽहिंसा परं पदम् ॥ ११ ॥

[हिन्दी] अहिंसा उत्कृष्ट धर्म है, अहिंसा उत्कृष्ट तप है, अहिंसा उत्कृष्ट ज्ञान है । अहिंसा उत्कृष्ट स्थान है ॥ १० ॥ अहिंसा उत्कृष्ट दान है, अहिंसा उत्कृष्ट इन्द्रिय दमन है, अहिंसा उत्कृष्ट यज्ञ है और अहिंसाही सबसे बड़ा ठिकाना है ॥ ११ ॥

[गु०] “अहिंसा श्रेष्ठ धर्म छे, अहिंसा श्रेष्ठ तप छे, अहिंसा परम ज्ञान छे. अहिंसा न उत्कृष्ट स्थान छे. ॥ १० ॥

अहिंसा उत्कृष्ट दान छे, अहिंसा उत्कृष्ट इन्द्रियदमन छे. अहिंसा उत्कृष्ट यज्ञ छे अने अहिंसा न सौथी मोट्ट पद छे ॥ ११ ॥

[सं०] उदकं नैव पातव्यं, रात्रौ च हे युधिष्ठिर ।

तपस्वीनां विशेषेण, गृहिणां च विवेकनाम् ॥ १२ ॥

अस्तं गते दिवानाथे, आपो रुधिरमुच्यते ।

अन्नं मांससमं प्रोक्तं, मार्कण्डेन महर्षिणा ॥ १३ ॥

[हिन्दी] हे युधिष्ठिर ! अहिंसा व्रतधारी मानवों को श्रावकों को और विवेकी पुरुषोंको तथा खासकर तपस्वी साधुओं को रात्रि में जल नहीं पीना चाहिये ॥ १२ ॥ क्योंकि मार्कण्डेय ऋषिने बताया है कि सूर्य अस्त हो जाने के बाद पानी खून के समान माना जाता है, और अन्न मांस के बराबर कहा गया है ॥ १३ ॥

विशेषः—रात्रि को जल ढोलना भी नहीं चाहिये क्योंकि इससे अनेक जीवों का नाश होता है । त्यागी पुरुषों को भी अगर जल से काम पड़े तो थोड़े से जलसे काम निकाल लेना चाहिये । गृहस्थों को विवेकसे जल ढोलना चाहिये । इसी तरह रात्रि भोजन भी वर्जनीय है ।

खासकर पर्युषण पर्वमें रात को भोजन का त्याग करना ही चाहिये । अगर हो सके तो चार महिना चौमासे में रात को नहीं खाना चाहिये, क्योंकि अगर खाने में कीड़ी आजाय तो मानव बुद्धिहीन होवे, जूँ (यूका) खाने में आवे तो जलोदर रोग हो, कोली (करोलिया) खाने में आवे तो रक्तपीतिया कोढ़ रोग हो, माखी खाने में आवे तो वमन (उलटी, कै) हो जाय ।

और भी कहा है कि रात्रि को खाने वाले लोग मरने के बाद प्रायः (घू घू) उल्टू, वागुल, चमगादड़, बिलाड़, गर्दम इत्यादि योनियों को प्राप्त होते हैं । जो लोग इन दिनों में रात्रिभोजन का त्याग करते हैं, उन्हें एक पक्षकी तपस्या का लाभ होता है ।

[सु०] “हे युधिष्ठिर! अङ्गिंसा प्रतधारी माणुसोऽप्ये, श्रावकोऽप्ये
अने विवेकी पुरुषोऽप्ये तथा भास करीने तपस्वी साधुऽप्ये रात्रे
पाणी नदीं पीतुं श्रेष्ठं ॥ १२ ॥ कारण्यु के भाङ्गुं उच ऋषिऽप्ये कङ्गुं छे
के सुखास्त पछी पाणी लोडीनी अरोअर अने अन्न मांसनी अरोअर
गणुदामां आवे छे ॥ १३ ॥

“रात्रे पाणी ढोलणुं पणु न श्रेष्ठं ॥ कारण्यु के तेथी अनेक एवेनो
नाश थाय छे । त्यागी पुरुषोने पणु न पाणीनी नदर पडे तो थोडांमां
थोडा पाणीथी काम पतावी वेतुं श्रेष्ठं ॥ गृहस्थोऽप्ये विवेकथी पाणी
ढोलणुं श्रेष्ठं ॥ ये रीते रात्रि-भोजन पणु वर्ज्यं छे ॥

भास करीने पर्युषण पर्वमां रात्रि-भोजनने त्याग करवे श्रेष्ठं ॥
अनी शकें तो चौमासाना चार महिना रात्रे नभवुं न श्रेष्ठं ॥ कारण्यु के
ने आवामां कीड़ी आवी नय तो माणुस बुद्धिहीन थकं नय, जूँ आवी
नय तो जलोदरने रोग थाय, करोलियो आवामां आवे तो रक्तपीतिया
कोढ़ रोग थाय, माखी आवामां आवे तो उलटी थकं नय ॥

वणी अथ पशु कर्तुं छे के रात्रे भोजन करवावाणा लोको भयां पछी भोटे भागे धुवड, भगला, डानडडियां, भिलाड, गधेडां वगेरे योनिभां जन्म पावे छे. जे भाषुसे आ दिवसेभां रात्रि-भोजनने त्याग करे छे तेभने अक पभवाडियानी तपस्थाने लाभ भजे छे."

[सं०] अतः सुश्रावकेणात्र पर्वणि खनन-पेषण-वस्त्रक्षालनाद्यारम्भो विवर्जनीयः । तैलिक-लाहकार-भाट्ट-कर्मकरादिषु वाचा, धनव्ययेन चारम्भो निवारणीयः, स्वशक्त्या बन्दिमोक्ष कार्यः, ग्राम-नगर-मध्येऽमारिघोषणा कारयितव्या येन केनापि प्रकारेण जीवरक्षा कार्या ॥

[हिन्दी] इसलिये सुश्रावक को इस पर्युषण पर्वमें खोदना, पीसना, वस्त्र धोना आदि कार्यों को नहीं करना चाहिये, और घाणी निकलवाना आदि तैल निकालने के कार्य, लोहार के कार्य, मोटी कर्म (चूडीगर-भडभूंजा के कर्म) इत्यादि कार्यों को वचन से अथवा धन खर्च करके भी बन्द कराने चाहिये । अपनी शक्ति के अनुसार बन्दी मोचन कार्य करना चाहिये, गाँव और शहर के मध्यमें अमपदान की घोषणा करानी चाहिये और किसी भी तरह से जीवों की रक्षा करनी चाहिये ॥ इस प्रकार पर्युषण पर्वमें विशेष करके प्रथम आश्रवका त्याग करना चाहिये ।

[गु०] अटला भाटे सारा श्रावकेअये आ पर्युषण पर्वभां जेहवुं, हणवुं. वस्त्रो धोवां वगेरे कामे न करवां जेहवुं. वणी घाणी कटाववी तथा घाणी खलाववी, बुहारनी लड़ी खलाववी, भाडभूजनुं काम वगेरे कार्यो समलवने अथवा पैसा भरवने पशु मंघ कराववां जेहवुं. पोतानी शक्ति अनुसार केहीअने जेजानवानुं काम पशु करवुं जेहवुं. गाम अने शहरभां 'अमपदान'नी घोषणा कराववी जेहवुं अने कोठ पशु रीते जेवोनुं रक्षा करवानुं काम करवुं जेहवुं. आ रीते पर्युषण पर्वभां भास करीने पडेला आश्रवने त्याग करवे जेहवुं.

[सं०] द्वितीयाश्रवपरित्यागे सृष्टावचनमत्र पर्वणि न वक्तव्यं गालिप्रदानादि-कंठिनवाणी न वाच्या सर्वथा वाक्शुद्धिः कार्या ।

[हिन्दी] द्वितीय आश्रव त्याग में निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये । पर्यु-
षण पर्वके आने पर विशेषतः झूठ न बोलें, गाली नहीं दें, कठोरवचन नहीं बोलें,
सब तरह से वचनशुद्धि करें । झूठी साक्षी नहीं भरें, मिश्र वचन नहीं कहना ।

विशेषः—वसुराजानें थोड़ा ही मिश्रवचन कहा था जिससे वह नरक में गया
और अनन्ताभव संसार बढ़ा लिया, जिसकी कथा आत्म प्रबोध—प्रमुख ग्रन्थों में प्रसिद्ध
है, इसलिये यहां नहीं लिखी ।

झूठ बोलने वाला मृत्यु के उपरान्त नये जन्म में मूक (गूंगा) होता है, वह
महा दुःख देखता है । कहा भी है :—

[गु०] पीत्वा आश्रयना त्यागमां नीयेनी आप्तोनुं ध्यान राज्जुं
अधिये.

पर्युषण पर्व आवे त्वारे आस करीने जुहुं न प्येवे. गाण न दे,
कठोर वचनो न प्येवे, जोड़ी साक्षी न दे, अने मिश्रवचनो न कहे अम
अधी रीते वचनशुद्धि करे.

वसु राज्जुं थोड़ाक व मिश्र वचनो कहां हुतां तेथी ते नरकमां
गयो अने अनन्ताभव संसार बढोरी लीयो जेनी कथा आत्मप्रबोध
वगेरे ग्रंथोमां प्रसिद्ध छे तेथी अही लपी नथी.

जोहुं जालवावाजा मृत्यु पछी नवा जन्ममां मुंगा थाय छे अने
महादुःखने पामे छे. कह्युं छे के—

[सं०] वषणाग्नि जस्स वयणं, निचमसच्चं वदह वचरसो ।

सुद्धीए जलसण्हं, कुणमाणं तह संति बुदा ॥ १ ॥

चित्तं राग रागादिभिः श्लिष्टमलीकवचनेर्मुखम् ।

जीवघातादिभिः कायो, गंगा तस्य पराङ्मुखी ॥ २ ॥

[हिन्दी] जिस मनुष्य के मुख में असत्य वचन रहता है, उसके मुँहसे निरन्तर
वर्चरस (विघ्ना) बहती है । अतः वचनशुद्धि के लिये सत्य सम्भाषण करना चाहिये
यही जल स्नान भी है, ऐसा पंडितजन कहते हैं ॥ १ ॥

अन्यमत के विद्वान् कहते हैं कि जिस मनुष्य का चित्त राग आदि मोहों से व्याप्त है, और जिसका मुख झूठे वचनों से व्याप्त है व जिसका शरीर जीवों के घातआदि पाप कार्यों से व्याप्त है, उस से गंगा भी पराङ्मुख रहती है। अर्थात् ऐसा पातकी अगर गंगा स्नान करके पवित्र होना चाहे तो वह नहीं हो सकता, क्योंकि स्वयं गंगा भी ऐसे प्राणी से मुंह फेर लेती है ॥ २ ॥

इसलिये जैन श्रावकों को इस आश्रव का अवश्य त्याग करना चाहिये। ऐसा करने से आत्मा को अत्यधिक सुख होता है।

[शु०] “जे मनुष्यना मुपमां असत्य वचन रहें छे तेना मोहामांथी हुंभेशां वर्यरस (विद्या) वहे छे.” वचनशुद्धिने भाटे हुंभेशा सायुं संलापयुं करवुं जेधंअ. सायुं जलस्नानं ज ये छे अेम पंडितजन कहे छे. ॥ १ ॥

अन्य मतना विद्वानो कहे छे के जे भाषुसनुं चित्त राग वगेरे मोहोथी व्याप्त छे, जेतुं मोहुं जुडा वचनोथी व्याप्त छे अने जेतुं शरीर लयोना घात वगेरे पापकर्मोथी व्याप्त छे, तेनाथी गंगा पशु मोहुं डेरवी जय छे. अर्थात् जेवो पापी जे गंगास्नान करीने पवित्र थवा धर्ये तो पशु ते थर्ध शकतो नथी. पुह गंगा पशु जेवा प्राणीज्योथी पराङ्मुख थर्ध जय छे. ॥ २ ॥

आथी जैन श्रावकोअे आ आश्रवनेो अवश्य त्याग करवो जेधंअ. जेवुं करवाथी आत्माने धर्युं वधारे सुप थाय छे.

[सं०] तृतीयाश्रवपरित्यागे पर-धन-प्रहणं विवर्जनीयं, इव्यस्य हि जन्तूनां बाह्य-प्राण-रूपत्वाच्चदपहारकस्य च मरण-रूप-कष्ट-हेतुत्वात् ।

[हिन्दी] तीसरे आश्रव के परित्याग में दूसरों का धन लेना आता है, अतः दूसरों का धन नहीं चुराना चाहिए “उसकी वस्तुएँ इधर उधर नहीं करना चाहिये, ओछे तोल या माप नहीं रखने चाहिएं। गिरवी रक्खी हुई या धापण धरोहर रक्खी हुई वस्तु नहीं दधाना चाहिए, किसी के विश्वासघात नहीं करना. दाण नहीं चुराना,

कोई भी वस्तु इधर उधर नहीं छिपाना, ये पांच मोटी चोरियों का त्याग तो अवश्य करना चाहिये" ।

विशेषः—मानवों का बाह्यप्राण घन में रहता है, अतः घन चुराने से उस प्राण को कष्ट पहुंचता है, अतः एक तरह की हिंसा होती है । इसलिये घन के अपहारक (चुरानेवाले को) नियम से फांसी आदि मरणप्रद कष्ट दिये जाते हैं, उसका विश्वास उठ जाता है इस सबका कारण चौर कर्म है, अतः विवेकी पुरुषों को इस तीसरे आश्रव का त्याग करना चाहिये ॥

[गु०] त्रीज आश्रवना परित्यागमां पीबन्तुं धन नदीं देवानुं आवे छे, अटले के पीबन्तुं धन नदीं चोरतुं लेछे, तेमनी वस्तुओ आडी अवणी नदीं करवी लेछे. आछा तोत्र अथवा माप नदीं रापवा लेछे. गिरवी मुकेली अथवा थापलु मुकेली कोधनी वस्तु नदीं द्यावपी लेछे. कोधनी साथे विश्वासघात न करवो, दाणुचोरी न करवी, कोधपलु वस्तु न्यां त्यां न छुपावपी—आ पांच मोटी चोरीओनो त्याग अवश्य करवो लेछे. "

मनुष्योंको बाह्य प्राण धनमां रहे छे, तेथी धन चोरवार्थी तेना प्राणने कष्ट पहुँचि छे अने तेथी अेक जतनी हिंसा थाय छे. अटला माटे धनना चोरवावाणाने नियमथां फांसी वगेरें मरलु निपजये तेवां कष्टो आपवामां आवे छे. तेनी उपरनो विश्वास छेडी जय छे. आ पधानुं कारणे चौरकर्म छे; माटे विवेकी पुरुषोअे आ त्रीज आश्रवनां सर्वाथा त्याग करवो लेछे.

[सं०] चतुर्थाश्रवपरित्यागेऽत्र पूर्वणि ब्रह्मचर्यं पालनीयं स्त्रीसङ्गो विवर्ज्य इत्यर्थः । परस्त्रीसेवनं तु लोकद्वयविरुद्धत्वात् सुश्रावकेणावश्यमेव वर्ज्यम् ॥

[हिन्दी] चौथे आश्रव में परस्त्रीसेवन वर्ज्य है, परन्तु पर्युषण पर्व के दिनों में स्वस्त्रीसेवन भी वर्ज्य है । इन आठ दिनों में तो पूर्णतः ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करना चाहिये । परस्त्रीगमन करनेवाले प्राणी इस लोक में विश्वास (परतीती) खो देते हैं, और उनकी इज्जत आबरू का सत्यानाश हो जाता है, तथा उनके धन का, कुल का

एवं शरीर का क्षय हो जाता है, ऐसा सोचकर परस्त्रीगमन को अवश्य छोड़ना चाहिये। उसका दूसरा भव भी परस्त्रीगमन से नष्ट हो जाता है। अतः आदकों को इन दिनों में शीलपालनें में तत्पर रहना चाहिये।

शील के परिपालन से ही सीता, द्रौपदी, सुलसा, रेवती, चंदनबाला आदि स्त्रियां इस संसारमें शाश्वत प्रसिद्धि को प्राप्त हुईं। उनके नाम आजभी चतुर्विध संघ द्वारा प्रातःकाल के प्रतिक्रमण आदि में निरन्तर जाते हैं।

[शु०] योथा आश्रवमां परस्त्रीसेवनं वज्यं छे, परंतु पर्युषण्यु पर्वना द्विसमां तो स्वस्त्रीसेवनं पण्यु वज्यं छे. आ आठ द्विसोमां तो पूष्यु-पण्यु अह्नयर्थप्रतनुं पालनं करवुं जेष्ठ्ये. परस्त्रीगमनं करवावाणा लोको आ लोकां विश्वासं ज्योष्ठं ज्येसे छे अने तेमनी धन-व्यापदनेो सर्वनाश थछ जय छे. तथा तेमना धननेो, कुणनेो तेम ज शरीरनेो क्षय थछ जय छे. आयुं विशारीने परस्त्रीगमनने अवश्य छोडी हेवुं जेष्ठ्ये. परस्त्रीगमनं करनारनेो ज्योष्ठं जय पण्यु नष्ट थछ जय छे ज्येठला माटे श्रावकोज्ये आ द्विसोमां शील पाणवामां तत्पर रहवुं जेष्ठ्ये.

शीलना परिपालनथी ज सीता, द्रौपदी, सुलसा, रेवती, चंदनबाणा, वगेरे स्त्रियो आ संसारमां कायभी प्रसिद्धि मेणवी यूकी छे. जेमनां नाम आज पण्यु चतुर्विध संघ प्रातःकालना प्रतिक्रमण्यु वगेरेमां निरंतर ले छे.

[सं०] पञ्चमाश्रवपरित्यागे धन-धान्यादि-परिग्रह-प्रमाणं कार्यम्। परिग्रह-तृष्णा अपरिमिता न धार्या इच्छापरिमाणं विधेयमित्यर्थः।

तथा पुनरस्मिन् पर्वणि कषायरोधः कर्तव्यः। कषायाश्चत्वारः क्रोध-मान-माया-लोभास्त्वेषां परित्यागो विधेयः ॥

[हिन्दी] पांचवे आश्रव के त्याग में अपरिमित परिग्रह का प्रमाण करना चाहिये। संसार में परिग्रह का थाह नहीं है, अतः बिना प्रमाण निश्चित किये कार्य नहीं चल सकता। अप्रमाण हो तो लालच बहुत दौड़ता है। अतः प्रमाण से परिग्रह करे, ताकि ज्यादा तृष्णा न दौड़े।

फिर इस-पर्युषण पूर्वमें कषायरोध भी करना चाहिये । कषाय चार हैं:-क्रोध, मान, माया, और लोभ. इनका परित्याग करना चाहिये ॥

[शु०] पांचमां आश्रवना त्यागमां, श्रावकाम्ये परिश्रद्धनुं प्रभाषु नक्ष्त्री करवुं ज्ञेधम्ये. संसारमां परिश्रद्धनो छेडो नथी, माटे परिश्रद्ध निश्चित कर्या विना श्रावतुं नथी, प्रभाषु नक्ष्त्री न होय तो जलु लावय थया करे छे. माटे प्रभाषुपूर्वक परिश्रद्ध करवो, ज्ञेथी तृष्या वधारे न होउ.

वणी पर्युषणु पूर्वमां कषायरोध पशु करवो ज्ञेधम्ये. कषाय चार छे. क्रोध, मान, माया अपने लोभ. आ शारनो परित्याग करवो ज्ञेधम्ये.

[सं०] क्रोधोदये हि कलहोत्पत्तिश्चिरन्तनप्रीतिनाशश्च, मानोदये विनयनाशश्च । तथा च सव्ध्यानवतामपि मुनीनां केवलापत्तौ अन्तरायः स्यात्, राजर्षि-बाहुबलिवत्, एवं मायोदये लोभोदयेऽपि च बहवो दोषा उत्पद्यन्ते. अतश्चत्वारोऽपि कषायास्त्याज्याः ॥ उक्तं च “ कौहो पीई पणासेइ, माणो विणयनासणो । माया मित्ताणि नाखेइ, लोहो सखविणासणो ॥१॥ तस्माच्छुभ आचारो येषात्ते शुभाचारतैः श्रावकैराश्रव-कषाय-रोधः कर्तव्यः इत्युक्तम् ।

[हिन्दी] क्रोध के उदय होने पर प्रीति का नाश हो जाता है । मान (अहंकार) करने से विनय का नाश हो जाता है । कषट करने से मित्रता नष्ट हो जाती है, लोभ करने से सारी समृद्धि नष्ट हो जाती है । अत्यन्त ध्याननिमग्न मुनियों के केवलज्ञानादि प्राप्ति में भी ये क्रोधादि अन्तराय कर देते हैं ।

अतः ज्यादातर कलह उठने देना नहीं, अगर हो तो भी उसे उपशम कर देना चाहिये । उदाहरण के तौर पर दमसान मुनिको केवलज्ञान प्राप्त होने के समय में क्रोध आने से वह ज्ञान रुक गया । इसी तरह बाहुबलीजीको मान आजाने से वे १२ डादश मास तक काउत्सर्ग में रहे, कषट करने से आषाढाभूति अणगार चारित्र भ्रष्ट होकर नटवी के यहां रहे, लोभ के उदयसे केसरियामुनि रात्रिभर भ्रमण करते रहे, तथा मम्मण शेट वगेरह दुर्गति को प्राप्त हुए । ऐसा समझकर कषायाश्रव का परिहार करना चाहिये ।

[शु०] क्रोधनो उदयः यथाथी प्रीतिनो नाशः थायः छे. अहंकारः करवाथी विनयनो नाशः थायः छे. कपटः करवाथी भित्तानो नाशः थायः छे. लोलः करवाथी भधी समृद्धिः नष्टः थधः न्ययः छे. अत्यंतः ध्याननिमग्नः मुनिभ्योना केवलज्ञानः प्राप्तः भां पशुः आः क्रोधः वगेरे दुर्गुणो आः आये छे.

भाटे, मोटे भागे कंकासः थवा द्वेवो नडी, अने थाय तो पशु तेने शमावी द्वेवो जेधःअ. द्वाभला तरीके दमसारः मुनिने केवलज्ञानः प्राप्तः थवाना समयमां क्रोधः आववाथी ते ज्ञानः थतुं अटकी गधुं. अे न प्रमाणे आहुअलिछने अभिमानः आवी नवाथी तेभ्यो १२ भासः सुधी काउस्सग्गमां रखा. कपटः करवाथी आभादाभूतिः अलुगारः यात्रिभ्रष्टः थधने नटडीने धेर रखा; लोलनाः उदयथी सिंहेकेसरीया मुनिः रात्रिभरः भ्रमणः करता रखा तथा भ्रमणः शैठः वगेरे दुर्गतिने प्राप्तः थया. अेषुं समछने कथायाश्रवणो परिहारः करवो जेधःअ.

[सं०] अत्र पुनरत्र पर्वणि यत्कर्तव्यं तदेव श्रावकविशेषणद्वारेणाह, कीदृशैः श्रावकैः सामायिक-जिनपूजा-तपोविधानादिकृत्यपरैः सामायिकं च जिनपूजा च तपश्च सामायिक-जिनपूजा-तपांसि तेषां विधानं करणं तदादीनि तत्त्वभृतीनि यानि कृत्यानि कार्याणि तेषु तत्परैरित्यर्थः । एतावता अत्र पर्वणि सुश्रावकैः सामायिकं कार्यम् । तत्स्वरूपश्लोकः—

समता सर्वभूतेषु, संयमः शुभभावना ।
आर्तरीद्र-परित्याग-स्तद्धि सामायिकव्रतम् ॥१॥
दिवसे दिवसे लवखं, देहः सुवण्यस्स खंडियं एगो ।
एगो पुणः सामाज्यं, करेह नः पदुप्पणं तस्म ॥ २ ॥

[हिन्दी] “ और कहते हैं कि इस पर्व में शक्ति अनुसार अपना धन सुकृत मार्ग में लगाना चाहिये, अन्य कार्यों में अर्थव्यय निष्फल है. धर्म में कृपण नहीं होना चाहिये ” इस पर्व में शुभाचारवाले श्रावकों को सामायिक करना और समभाव में बरतना चाहिये कहा है । सामायिक का क्या स्वरूप है—सब जीवों पर समभाव रखना, शत्रु मित्र एक जैसे समझना, राग द्वेष की परिणति कम करना, पापारम्भ का काम नहीं करना, शुभ भावना रखना । इस तरह के व्यवहार का नाम सामायिक है । ”

सामायिक करने से क्या फल होता है?—

कोई पुरुष निरन्तर लाख खंडी सोना दान में दे और एक व्यक्ति सामायिक करता है तो सामायिक की तुलना में वह दान तुच्छ टड्ढरता है ।

अब इस के फल के बारे में एक कथा कहते हैं :—

[गु०] उपरांत कहे छे के “ आ पर्वमां शक्ति अनुसार पोतानुं धन सारा काममां पर्यंतुं जेछये. जीन कामांमां ‘अरयेतुं’ धन निष्कण छे. धर्ममां कृपणु न रहैतुं जेछये. ” आ पर्वमां सदाचारी श्रावकेये सामायिक करवी जेछये तथा समभावथी वर्ततुं जेछये.

सामायिकनुं शुं स्वरूप छे ?

“ अथा छवे पर समभाव राभवो, शत्रु-भित्रने जेक जेवा मानवा, राग-द्वेष ज्योछा करवा, पाप जेमां थाय तेवां कामो न करवां, शुभ लावना राभवी-आ जतना व्यवहारनुं नाम सामायिक छे. ”

सामायिक करवाथी शुं इण भणे छे ?

कोई भाणुस हंमेशा लाख जांडी सोनुं दानमां आये अने कोई व्यक्ति सामायिक करे तो सामायिक करनारनी सरभामणीमां जे दान तुच्छ करे छे.

छवे तेना इणने अंगे कथा कहुं छुं :—

कथा —

एक बार राजग्रही नगरी में श्रेणिक राजा श्री महावीरस्वामी को वन्दन करने गया । वह वहां उनसे धर्माख्यान सुन रहा था । इसी समय में एक कुछ रोग से पीडित व्यक्ति वहां आया । वह भगवान से कहने लगा कि हे प्रभु ! आप मर जाओ । इतना कह कर उसने अपने शरीर से निकलने वाली पीप का लेप भी भगवान के शरीर से लगाया । यह देख श्रेणिक राजा को क्रोध आया । उसने विचार किया कि यह दुष्ट यहां से बाहर निकले तो इसे मैं सजा दूं । राजा मन के

भीतर बात उस कोड़ीने समझ ली। वह श्रेणीक राजा से बोला "तुम मत मरना" उसने अभयकुमार से कहा, "मरो या जिन्दे रहो" इतना कह कर वह कोड़ी समवसरण से बाहर निकला। श्रेणीक राजाने अपने सैनिकों को संकेत किया कि वे इसे पकड़ ले। जब सैनिक उसे पकड़ने दौड़े तब वह आकाश में उड़ गया।

[गु०] एक बार राजगृही नगरीमां श्रेणिक राज् भगवान् श्री महावीरस्वामीने वंदन करवा गया. ते त्यां तेमनी पासेथी धर्मदशना सांभणी रखा छता. ऐ वभते एक दुष्ट रोगथी पीडतो भाणुस त्यां आव्थे. ते भगवानने कहेवा लाव्थे के "हे प्रभु! तमे मरी जव्थे." आठवुं कहीने तेणु पोताना शरीरमांथी नीकणता पास-परुने लेप पणु भगवानना शरीरिं कर्यो. आ जेठने श्रेणिक राजने क्रोध आव्थे. तेणु विचार कर्यो के आ दुष्ट अडिथी अहार नीकणे तो हुं जेने सब करुं. राजना मननी पात पेसा कोदीथे समझ गयो जेने तेणु श्रेणिक राजने कहुं के "तमे मरेशो नडि." वणी तेणु अभयकुमारने कहुं के "मरो के छवतां रहो." आठवुं कहीने ते कोदीथे समवसरणमांथी अहार नीकणी गयो श्रेणिक राज्जे पोताना सनिकोने तेने पकडवानो संकेत कर्यो. ज्यारे सैनिको तेने पकडवा होउथा त्यारे ते आकाशमां उडी गयो.

[हिन्दी] यह देख श्रेणीक राजा को महान् विस्मय हुआ। उसने भगवान से पूछा "यह कौन पुरुष हैं? भगवानने बताया कि यह एक देवता था। पूर्वभच में यह ब्राह्मण था। एक बार एक राजा इस पर प्रसन्न हुआ। राजाने कहा, "अरे ब्राह्मण! मांग, जो तुझे चाहिये वह मैं दूंगा। ब्राह्मण बोला "मैं अपनी पत्नी से पूछ कर याचना करूंगा। ब्राह्मणने घर जाकर अपनी स्त्रीसे पूछा, कि राजा अपने पर तुष्टमान हुआ है सो क्या मांगा जाय? तब स्त्रीने कहा कि उनसे मांगो कि अपन सब लोगों के घर में निरंतर अनुक्रम से प्रतिदिन भोजन करने जावे और उनसे दक्षिणा में एक २ सुवर्णमुद्रा प्राप्त करें। यह सुन ब्राह्मणने राजा से स्त्री के कथनानुसार याचना की। तत्काल राजाने ठीक ऐसा ही हो, कह कर इस बात का पट्टा (लिखित प्रमाण) कर दिया। बहुत दिनों के बाद ब्राह्मण के मन में लोभ ने घर कर लिया। उसने सोचा कि अगर मैं नित्य बहुत से घरों में भोजन करूँ तो ज्यादा सुवर्ण मुद्राएँ प्राप्त होगी। ऐसा विचार कर वह नित्य बीस घरों में भोजन करने लगा।

[गु०] आ जेधने ब्रह्मिण्ड राजने जहु आश्वर्य थयुं. तेणे भगवानने पूछयुं : " आ भाग्युम कोणु छे ? " भगवाने कहुं के अे अेक देव हुते. पूरु अवमां अे आद्वेषु हुते. अेकवार अेक राज तेनी उपर प्रसन्न थयो अने तेनी धर्यामां आवे ते मागवा कहुं. आद्वेषु कहुं के ते पोतानी पत्नीने पूछीने पछी भागरी. आद्वेषु धर जेधने पोतानी स्त्रीने पूछयुं के आपणु उपर राज प्रसन्न थया छे अने भागवानुं कहुं छे, तो शुं भागयुं ? तयारे स्त्रीअे कहुं के तमे अेम मागो के आपणु लोकोने धर रोज वाराकरती जमवा जेधने अने तेमनी पासेथी आपणुने रोज अेकेक सोनामहोरे दक्षिणामां भजे. आ सांभणी आद्वेषु स्त्रीना कडेवा प्रभाणु राज पासे भागणी करी. तरत जे राजअे तमारा कडेवा प्रभाणु जे थरी. अेम कहुंने तेने अे अेगिने पक्षी लभी दीधी. धणु दिवसे पछी पणु आद्वेषुना मनमां लोभे धर कयुं. तेणे विचारुं के जे हुं रोज धणु धरोमां भोजन करुं तो मने धणी सोनामहोरे भजे. अेम विचारीने ते हुंमेशा वीश धरोमां भोजन करवा लाग्यो.

[हिन्दी] इस तरह नित्य २० स्वर्णमुद्राएं अर्जित करने लगा। ज्यादा खानेसे शरीर में रक्तपित्तिचा कुछ रोग हो गया। कुटुम्बियो ने उसें अलग कर दिया। वह कोढ़ी खिसियाना हो कर इस पर विचार करने लगा कि ये सारे कुटुम्बी जन स्वार्थी हैं। ऐसा जान कर एक दिन उसने न्याति को इकट्ठा किया। वह कहने लगा, मैं एक ज्ञातिभोजन कराना चाहता हूं और प्रत्येक को एक स्वर्णमुद्रा भी देना चाहता हूं। अतः आप सब मिल कर बाजार से सामान ला कर अलग से रसोई बना कर भोजन कर लें मैं हाथ नहीं लगाऊंगा। न्याति के लोगों ने इसे मंजूर किया। जब रसोई तैयार हो गयी तो उस कोढ़ी ने गुप्त रीति से उस में अपने शरीरकी पीप मिला दी। इस से रसोई खाने वाले सब कोढ़ी हो गये। यह बात लोगों में प्रगट हो गयी। अब वह कोढ़ी निन्दित हो कर तीर्थ यात्रा को चला गया। मार्ग के पर्वत में द्रव आया उस में मरने हेतु गिरा।

[गु०] आ प्रभाणु ते रोज वीश सोनामहोरे कभावा लाग्यो. वधारे आवाथी तेना शरीरमां रक्तपित्तियो कोठ थयो. सगां संयधी-अेअे तेने जुदे कढयो. ते कोदियो पसियाणु पडी जेधने विचारवा

लाभ्यो के आ सगांसंभधीओ स्वार्थी छे. तेथी तेणे अेक दिवस आभी
ज्ञातिने अेकठी करी अने तेने कडेवा लाग्यो के "हुं" अेक ज्ञातिभोजन
कराववा आहुं छुं. अने प्रत्येक ज्ञातिजनने अेकेक सोनामडोर दानमां
आपवा छुं, भाटे आप सौ अन्तरमांथी सामान लावी जुही
रसोअ पतावो अने जमी ल्यो. हुं रसोअने हाथ पखु लगाडीश नडि."

ज्ञातिना भाएसोअये तेनी वात भंजूर रापी. ज्यारे रसोअ तैयार
थरु गधं त्यारे ते कोदियाअे छानी रीते पोतानुं पड़ तेमां लेजवी
हीधुं; आथी जमवावाणा अथा कोदिया थरु गया. आ वात प्रगट थरु
गधं. हुवे ते कोदियो निश्चित थरुने जत्रा करवा आल्यो गयो. रस्तामां
अेक पर्वतनी तणेटीमां सरोवर आव्युं तेमां ते भरवानी छुं आथी पडयो.

[हिन्दी] सौभाग्य से पानी का स्पर्श होते ही उसका कुछ रोग चला गया।
शरीर स्वच्छ निर्मल बन गया। अनन्तर साधु महाराज की संगति से समकित को
प्राप्त हुआ। कालधर्माजुसार देवलोक में देव बना। वही यह देवता पूर्व भव के
रूप से मुझे वन्दन करने आया व मेरे शरीर से चन्दन लगाया। हे श्रेणीक! तुम्हें
वह पीप नजर आई मुझे मरने का कहा, उसका तात्पर्य यह है कि "अब
आप मोक्ष पधारो यहाँ कुछ नहीं है।" फिर तुम्हें जीवित रहने का कहा, इन का
तात्पर्य यह है कि परलोक में तुम्हें सुख नहीं है अतः तुम मृत्युलोक में ही रहो।
अभयकुमार को यहाँ तथा वहाँ (परलोक) दोनों में सुख है, इससे उसे "जियो
अथवा मरो" ऐसा कहा।

भगवान की यह बात सुनकर श्रेणीक बोला "हे भगवान। मुझे परलोक में
क्या दुःख है?" भगवान बोले कि तू मर के नरक में जायगा वहाँ, "चौरासी
हजार वर्ष तक दुःख देखेगा।

[गु०] सद्भाअये पाएीनो स्पर्श थतां ज तेनो कोड आल्यो गयो.
शरीर स्वच्छ अने निर्मल थरु गयुं. पछी साधु महाराजेनी संगतिथी
तेने समकित प्राप्त थयुं अने देव अनी गयो. अे आ देव पूर्वभवना
अये अने वंदन करवा आल्यो अने भारे शरीरे तेणे थंदन लगाव्युं.
हे श्रेणीक! तने ते थंदन पड़ लाग्युं. तेणे अने भरवानु कहुं तेनुं

तात्पर्यं ये छे के “हवे आप भोक्ते जन्मो; अहिं हवे कांठ नथी” जेम ते कहेवा भागतो हुतो. वणी तमने छवतः रडेवानुं कहुं तेनुं तात्पर्यं ये छे के ‘परलोकभां तमने सुख नथी भाटे तमे मुत्युलोकभां न रडे।’ अलयकुमारने अडीं तथा परलोकभां अन्नेभां सुख छे तेथी तेने, “छवे अथवा भरी” जेम कहुं.

भगवाननी आ वात सांभजीने श्रेणिके कहुं: ‘हे भगवान! मने परलोकभां शुं दुःख छे?’ भगवाने कहुं: ‘तुं मरीने नर्कभां नदश अने चौराशी छत्तर वर्ष सुधी दुःख देपीश. ’

[हिन्दी] यह बात सुनते ही श्रेणिक राजा विलाप करता हुआ बोला, कि आपके चरण सेते हुए भी मुझे नरक होगा? अब तो कोई उपाय बताइये, जिससे नरक में न जाऊं। भगवानने कहा कि “तप कर” राजा बोला “मैरी शक्ति नहीं तो कपिला दासी से दान दीला, प्रभुने कहा, यह सुन राजाने दासी को दान देने कहा। दासी बोली, मैं नियम नहीं तोड सकती। इस पर राजाने क्रोधित हो दासी के हाथ से चाट्टु बांध दिया। इस पर दासी कहने लगी कि मैं दान नहीं देती हूं यह दान राजा का चाट्टु देता है। यह बात भी राजा से नहीं बनी। तब राजाने दूसरा उपाय पूछा। भगवानने बताया कि कालकबरिया कसाई को जीवहरया से मना किया, पर वह माना नहीं। तब राजाने उसे एक खइडे में डाल दिया। वह कसाई मिट्टी के भैसे बनाकर मारने लगा।

[गु०] आ वात सांभजतां न श्रेणिक राज् विलाप करतो प्यात्यो: “आपना चरणु सेववा छतां मने नरक भणशे? तो पछी आवो केठ उपाय बतावो जेथी मने नरक न भणे.” भगवाने कहुं: “तप कर” राज्जे कहुं: “भारी शक्ति नथी.” भगवाने कहुं “तो कपिलादासी पासै दान अपाव.” आ सांभजी राज्जे दासीने दान देवानुं कहुं. दासीज्जे कहुं: “हुं नियम नहीं तोडी शकुं.” आथी राज्जे क्रोधित थछने दासीना हाथ साथै दान देवानो आठवो आंधी दीथो. आथी दासी कहेवा लागीं के “हुं दान देती नथी पशु दान राज्जे आठवो दे छे.” आ वात पशु राज्थी अनी नहीं तेथी राज्जे जीबे उपाय पूछयो. भगवाने कहुं के “कालकबरिया कसाईने जेसो मारतां तुं शेकी शके तो

तुं नरकमां नहि न।' राज्ञ्ये कालकसूरिया कसाधने छवहत्या करवानी भनाई करी, पशु ते मान्यो नहि. त्यारे राज्ञ्ये तेने अेक छंडा भाडाभां नभाय्यो तो ते कसाई त्यां पशु गारानी भेसे। अनापीने तेने मारवा लाग्यो.

[हिन्दी] तब राजाने उसे कुए में लटका दिया। इस पर वह अपने शरीरका मैल उतार कर भैसे बना कर मारने लगा। इतना दण्ड देने पर भी वह कसाई माना नहीं। अब राजाने भगवान से तीसरा उपाय पूछा। इसे भगवानने कहा कि पुण्याश्रावक की सामायक जो ले लेवे तो नरक में नहीं जावेगा। राजा पुण्याश्रावक के पास गया और बोला, “ जो तुम्हारे घन लेना हो सो मुज से ले लें, और मुझे एक सामायक दे दें। ” तब पुण्याश्रावकने कहा कि जिस एक सामायक के फल का भगवान् आदेश दैगे वही मैं दूंगा। दोनो तब भगवान के पास जाकर फल पूछने लगे, भगवानने उचर दिया. “ कोई एक लाख खंडी एक वर्ष तक निरन्तर दान में देवे, तो वह भी एक सामायक के फल के तुल्य नहीं होता है। ”

[३७] त्यारे राज्ञ्ये तेने कुवाभां लटकाय्यो. तो ते त्यां पशु पोतान्ना शरीरनो मैल उभाडीने तेनी भेसे। अनापीने तेने मारवा लाग्यो. आटयो हंड देवा छतां पशु ते कसाई मान्यो नही, त्यारे राज्ञ्ये भगवानने त्रीजे उपाय पूछ्यो. त्यारे भगवाने कहुं के “ पुण्याश्रावकनी अेक सामायिकनुं इण तुं लई ले तो तुं नरकमां नहि नय.” राज्ञ पुण्याश्रावकनी पासे गयो अने ज्योयो: “ तारे जेठुं घन मारी पासेथी जेवुं होय तेठुं ले, पशु मने तारी अेक सामायिकना इण आप. त्यारे पुण्याश्रावके कहुं के “ जे अेक सामायिकना इण माटे भगवान आदेश देरो ते हुं तमने आपीश. ” अन्ने पछी भगवाननी पासे गया अने पूछवा लाग्या, त्यारे भगवाने जवाब आय्यो: “ कोई पुरुष अेक लाख भांडी सोनुं अेक वर्ष सुधी रोज दानमां आपे तो पशु ते अेक सामायिकना इणनी अरोगर धतुं नथी.”

[हिन्दी] यह सुन राजा बोला कि महाराज! इतना घन तो मेरे घर में भी नहीं है, फिर सामायिक कैसे आवे? इतना कह कर वह विलाप करने लगा। तब भगवानने कहा “ अरे! तू क्यों विलाप करता है, जाने वाली चौबीसी में तुम भी मेरे जैसे ही तीर्थंकर बनोगे। ” यह बात सुनकर राजा हर्षित हुआ।

अतः भव्यो ! सामायिक का ईतना फल जानकर पशुपणा पर्व में विशेष करके सामायिक करना चाहिये ॥

[शु०] आ सांभजी राज् म्पिल्यो के ' महाराज ! आठलुं धन तो मारा धरमां पशु नथी, तो पछी सामायिकतुं इण केम आवे ? अम कडीने ते विवाप करवा लाग्यो. त्यारे भगवाने कहुं के " तुं शा माटे विवाप करे छे ? हुवे पछी आववानाणी योवीशीमां तुं पशु मारा जेवो ज तीर्थकर थछि. " आ सांभजीने राज् आनंद पाभ्यो.

माटे के भव्य लोक ! सामायिकतुं आवुं इण जणुने विशेष करीने पशुपण्य पर्वमां सामायिक करवी जेछि अ.

[सं०] आदिपदात्पौषधः कार्यः पौषधफलमिदम् :—

“पोसहि य सुहे भावे, असुहाई खवेइ नस्थि संदेहो ।

छिदई निरय-तिरियगइ, पोसह-विहि-अप्यमत्तेण ॥”

[हिन्दी] और पौषधव्रत भी करना चाहिये पौषध का फल निम्न हैं:—जो धर्म को पुष्ट करे उसका नाम पोसह है । इस व्रत करने से मनुष्य नरक तिर्यच की गति में नहीं जावे, दुःख प्राप्त नहीं करे । वह महापुण्य उपार्जन (इकट्टा) करता है ॥

[गु०] वणी पौषधव्रत पशु करवुं जेछि अ.

पौषधव्रतनुं इण नीचे भुज्य छे :—

जे व्रत धर्मने पुष्ट करे ते व्रतनुं नाम पौषधव्रत छे. आ व्रतने करवाथी मनुष्य नरकमां अथवा तिर्यचनी गतिमां जतो नथी. दुःख पशु प्राप्त करतो नथी अने महापुण्य उपार्जन करे छे. ”

[सं] तत्करणसामर्थ्याऽभावेऽस्मिन् पर्वणि सुश्रावकैर्यथाशक्ति जिनानां द्रव्यपूजा भावपूजा च कर्तव्या ॥ पूजाफलामदम् :—

“सयं पमज्जणे पुन्नं, सहस्सं च विलेवणे ।
सयसहस्सिया माला, अर्घंतं गीय-वाइए ॥ १ ॥

मनोवाकायशुद्धयात्र पर्वणि पूजा स्नात्रादिकं विधेयं तदवसरे च भगवतः
छन्नस्थत्व-केवलित्व-सिद्धत्वरूप-मवस्थाप्रयं भावनीयम् ।

[हिन्दी] पर्युषण महापर्व में विन भगवान की पूजा करना चाहिये । इससे मानवों के रोग, शोक, आपत्तियां, दौर्भाग्य आदि दोष नष्ट हो जाते हैं । यह पूजा स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) सुख को देने वाली है । पूजा करने से कई प्राणियों को केवलज्ञान हो गया है । कहा भी है कि-भगवान से मोरपिच्छ से पूजने से (१००) शत गुणित पुण्य होता और उन पर विलेपन करने से हजार गुणित पुण्य होता है । तथा पुष्पमाला पहिनाने से लाख गुणित, और गीत नाटक आदि भक्ति करने से अनन्तगुणा पुण्य होता है ।

[शु०] पर्युषण महापर्वमां जिन भगवाननी पूजा करवी जेछम्मे. आनाथी लोकेना रोग, शोक, आपत्तियो, दुर्भाग्य वगेरे दोषानो नाश थाय छे. आ पूजा स्वर्ग अने मोक्षना सुखने आपवावाणी छे. आ पूजा करवाथी केतसाथे प्राणीम्माने केवलज्ञान अर्घ गयुं छे. वणी अम पणु कहुं छे के भगवाननुं मोरपीछथी पूजन करवाथी सोगाणुं पुण्य भणे छे अने तेमनी प्रतिमा उपर अहननुं विलेपन करवाथी एवरगाणुं पुण्य भणे छे. वणी भगवानने पुष्पभाणा पहरेपवाथी लाभगाणुं अने गीत नाटक वगेरेथी लडित करवाथी तो अनंतगाणुं पुण्य भणे छे.

[हिन्दी] भगवान की प्रतिमा का स्नान कराते वक्त और उनकी पूजा करते वक्त 'छन्नस्थावस्था' का ध्यान करना चाहिये और वक्त चढ़ाते समय प्रातिहार्य वक्त "केवली" तथा काउस्मग्य और पद्मासन के समय भगवान की "सिद्धावस्था" का ध्यान करना चाहिये । इस तरह भगवान की द्रव्यपूजा करना चाहिये यदि ऐसा न बन पड़े तो प्रभात समय जिनमंदिरमें जा कर शुद्ध भावसे भगवान के दर्शन करना चाहिये । भगवान की मुद्रा देखकर चैत्यवन्दन-स्तुति-स्त्वनादि कहना, क्यों कि दर्शन करने से पापों का नाश होता है, नमस्कार करने से

मनोकामना सिद्ध होती हैं, विधि से पूजन करने से तो मानवों और स्त्रियों के लिए भगवान साक्षात् कल्पवृक्ष के समान फल देते हैं। इस तरह पूजन करना चाहिये।

“ षड्वणचमेहि छउमत्थ, - वत्थ पडिहारगेहि केवलियं ।
पलियंकुस्सग्गेहि य, जिणस्स भाविज्ज सिद्धत्तं ॥ ”

[सु०] भगवान्नी प्रतिमाने स्नान करावती वपते तथा तेमनी पूज करती वपते भगवान्नी “ छउमत्थावस्था ” नुं ध्यान करवुं लेछये. अने वत्थ वडावती वपते प्रतिहारयुक्त ‘ केणवी अवस्था ’ नुं तथा काठिसगग अने पझासन वपते भगवान्नी “ सिद्धावस्था ” नुं ध्यान करवुं लेछये. आ प्रमाणे द्रव्योथी भगवान्नी पूज करवी लेछये. ले आ प्रमाणे न अनी शके तो वहेली सवारे जिनमंदिमं लछने शुद्ध आवथी भगवान्नुं दर्शन करवुं लेछये. भगवान्नां दर्शन करीने चैत्यवंदन, स्तुति, स्तवन वगेरे ज्ञापनां. कारणु के दर्शन करवाथी पापेना नाश थाय छे, नमस्कार करवाथी मनोकामनानी सिद्धि थाय छे अने विधिपूर्वक पूजन करवाथी तो स्त्रीया अने पुत्रोने भगवान साक्षात् कल्पवृक्षनी समान इण आपे छे.

[सं०] द्रव्यपूजामामर्थाभावे तु भावपूजैव कर्तव्या सा चैत्थं-प्रातः श्री जिन गृहं गत्वा शुद्धभावेन भगवद्दर्शनं कार्यं भगवन्मूर्त्तां विलोक्य च तद्गुणगणस्मरणं विधेयं तत्फलं यथा—

“ दर्शनावुद्दुरितध्वंसी वन्दनाद्वाञ्छितप्रदः ।
पूजनात्पुरकः श्रीणां जिनः साक्षात्सुरद्रुमः ॥ ”

पुनः श्री-जिन-दर्शनादेव वहुनां भव्यानां बोधिबीजावाप्तिभवत्यार्द्रकुमारवत्-
वृत्तान्तवस्तु इत्थम् । अस्मिन् भरतक्षेत्रे समुद्रतीरे आर्द्रको नाम यवनदेशोस्ति । तत्र-
र्द्रकपुरं नाम नगरम् । तत्रार्द्रकनामा राजा बभूव । तस्य चार्द्रिका नाम्नी पटराज्ञी
तयोरार्द्रकुमारो नाम पुत्रोऽभूत् ।

[हिन्दी] फिर श्री जिनदर्शन से ही बहुत से भय लोनों को बोध की प्राप्ति आर्द्रकुमारकी तरह हुई तथा बहुत से जीव मोक्ष को भी प्राप्त हुए। आर्द्र-कुमार कैसे सुखी हुए इसकी कथा इस प्रकार है।

मगध देशमें बहुत सुन्दर राजगृही नगरी है। उसमें श्रेणिक राजा राज्य करता था। उसके चारों बुद्धियों में प्रवीण अभयकुमार नामका पुत्र था। यह पांचसौ प्रधानों के उपर स्वामी था। जितने भी राजे रजवाड़े थे वे सब अभयकुमार को पूछ के काम करते हैं। उसी मरतक्षेत्रमें समुद्र के तट के पास एक " आर्द्रकनाम " का अनार्य देश था। उसमें " आर्द्रकनाम " का एक शहर था। उसके राजाका नाम ' आर्द्रक ' था। यह राजा म्लेच्छ था। इसकी पटरानी का नाम आर्द्रिका था। उनके ' आर्द्रककुमार ' नामका एक पुत्र हुआ।

[गु०] वणी श्री जिनदर्शनथी व धर्या भव्य लोकाने अधिपिनी प्राप्ति आर्द्रकुमारनी जेम थई छे, तथा धर्या छवोने मोक्षनी प्राप्ति थई छे. आर्द्रकुमार डेवी शीते सुभी थया तेनी बात नीये प्रमाणे छे.

मगध देशमां राजगृहि नामे एक पुत्र सुंदर नगर હતું. તેમાં શ્રેણિક રાજા રાજ્ય કરતા હતા. તેને ચારે બુદ્ધિઓમાં પ્રવીણ અભય-કુમાર નામે પુત્ર હતો. તે પાંચસો પ્રધાનોના ઉપરી હતો. બીજા બધા રાજાઓવાડા અભયકુમારની સલાહ લઈને રાજ્ય કરતા હતા. ભરતક્ષેત્રમાં સમુદ્રના કિનારાની પાસે એક આર્દ્રક નામે અનાર્ય દેશ હતો. તેમાં આર્દ્રક નામનું એક શહેર હતું. તેના રાજાનું નામ આર્દ્રક હતું. તે રાજા મ્લેચ્છ હતો. તેની પટરાણીનું નામ આર્દ્રિકા હતું. તેને આર્દ્રકકુમાર નામે એક પુત્ર થયો.

[सं०] स च क्रमेण सम्प्राप्तधौवनः स्वेच्छया मनोज्ञान् भोगान् भुञ्जानः सुखेन तिष्ठति स्म । तस्य चार्द्रकराजस्य श्रेणिकराजेन सह परम्परागता परमप्रीतिरभूत् । एकदा श्रेणिको नृपः प्रचुरं प्राभृतं प्रगुशीकृत्य आर्द्रकराजसमीपं निजामात्यं प्रेषीत् । सोऽमा-त्योऽपि कियद्विमिदिनेस्तत्र गत आर्द्रकनृपेण बहवदरेण सम्भाष्य तेन मन्त्रिणा उपनी-तानि प्राभृतानि गृहीतानि वृष्टञ्च तस्मै मद्बन्धोः श्रेणिकस्य कुशलं वर्तते ततस्तेनापि व्रत्य-सकल-कुशलोदन्तनिवेदनेन राज्ञो मनसि परमानन्दः सम्पादितः ॥

[हिन्दी] वह पुत्र अनुक्रम से पालन पोषण से संबंधित जवानी को प्राप्त होकर अनेक प्रकारके सुखो का उपभोग करता हुआ सुख से रहता था। उस आर्द्रक राजाकी श्रेणिक राजा के साथ परम्परागत परम प्रीति थी। एक बार श्रेणिक राजाने खूब उपहार देकर अपने मुख्य अमात्यको आर्द्रक राजा के पास भेजा। वह अमात्य वहां पहुंचा। म्लेच्छ राजा आर्द्रके उसका खूब आदर सत्कार किया। उसने भी सारे उपहार राजा को भेंट किये। तब आर्द्रकने श्रेणिक राजा के कुशल समाचार पूछे। प्रधानने भी सारा कुशल वृत्तान्त कहकर राजा श्रेणिक के समाचार उसे सुनाये, जिससे वह आर्द्रक राजा बहुत आनन्दित हुआ।

[शु०] ते पुत्र क्रमेणै पालन पोषण्थी वधतो वधेनो ज्जुवान थये अने अनेक प्रकारना भोगो भोगवतो सुअथी रहतेतो हतो. आर्द्रक राजनी श्रेणिक राजनी साथे वंशपरंपराथी मैत्री हती. एकवार श्रेणिक राजने पुण्य भेटो अउने पोताना मुख्य प्रधानने आर्द्रक राजनी पासो भोकटयो. प्रधान त्यां पहुँचये त्त्यारे म्लेच्छ राज आर्द्रके तेनो पुण्य आदर-सत्कार कर्यो. प्रधाने यथा भेट-सोगाहो राजने अर्पण्य करी. पछी आर्द्रक राजने श्रेणिक राजना कुशल समाचार पूछया. प्रधाने यथा कुशल समाचार तथा राज श्रेणिकना समाचार पणु तेनो कथा, जे सांजणीने आर्द्रक राज यथो आनंद पाये.

[सं०] तस्मिन्नवसरे आर्द्रकुमारो नृपं पप्रच्छ, भो तात ! कः श्रेणिको वेन सह तवेदशी प्रीतिः प्रवर्तते। राजा प्रोवाच-मगधदेशस्वामी श्रेणिकनृपो विद्यते तत्कुलस्य मत्कुलस्य च परम्परयागता प्रीतिरस्ति एतत्पितृवचः श्रुत्वा चार्द्रकुमारोऽपि मंत्रिण-सुवाच, भो मंत्रिन् ! त्वत्स्वामिनः कश्चित्सम्पूर्णगुणोपेतः पुत्रोऽस्ति ? तेन सह अहमपि मैत्र्यं कर्तुमिच्छामि। वन्द्युवाच, श्रेणिकस्य अभयकुमारो नाम पुत्रोऽस्ति, स च सर्वकलानिधिः सर्वबुद्धिसमुद्रो मंत्रिपञ्चशताविधो महादयावान महादाता अति-दक्षो निर्भयो धर्मज्ञः कृतज्ञश्च विद्यते। किं बहुना ते केऽपि नगति गुणा न सन्ति येऽभयकुमारे निवासे न कृतवन्तः ॥

[हिन्दी] उस अवसर पर आर्द्रकुमारने अपने पिता से पूछा " हे तात ! वह श्रेणिक राजा कौन है ? जिसके साथ आपको ऐसी प्रीति है "। राजा बोला, " मगध

देशका स्वामी श्रेणिक राजा है। उसके कुल की और मेरे कुल की परम्परा से प्रीति खली आ रही है। पिता के ये वचन सुनकर आर्द्रकुमारने भी मंत्री से कहा, "हे अमात्य! क्या तुम्हारे स्वामी के भी कोई सम्पूर्ण गुणों से युक्त पुत्र है? उसके साथ मैं भी मित्रता करना चाहता हूँ।" मंत्री ने कहा "श्रेणिक राजा के अभयकुमार नामका पुत्र है, वह सब कलाओं की खान है, सब बुद्धियों का समुद्र है, पांचसौ प्रधानों के ऊपर स्वामी है, महादयावान् है, महादाता है, निर्भय है, धर्मज्ञ है, और कृतज्ञ है, और ज्यादा क्या कहें, संसारमें जितने भी गुण हैं, वे सब अभयकुमार में निवास करते हैं।"

(सु) अथ वपते आर्द्रकुमारे पीताना पिताने पूछ्युः " हे पिताथ आ श्रेणिक राज्ञ कोणु छे, के जेनी साथे आपनी मित्रता छे? " राज्ञे कथुं: " श्रेणिक राज्ञ भगधदेशना स्वामी छे तेना कुंटुपनी साथे आपणी वंशपरंपराथी मैत्री खली आवे छे. " पितानां आ वथने सांभजाने आर्द्रकुमारे मंत्रीने पूछ्युं: " हे अमात्य ! शुं तभारा राजने कोई संपूर्ण गुणोथी युक्त पुत्र छे? हुं पणु तेनी साथे मैत्री करवा छियु छुं. " मंत्रीअे कथुं: " श्रेणिक राजने अभयकुमार नामना पुत्र छे. ते अधी कणाओना जलुकार छे, बुद्धिओना जलु के समुद्र छे. पांचसौ प्रधानोना ते उपरी छे. महा दयावान छे, महादाता छे, अत्यंत दक्ष छे, निर्भय छे, धर्मज्ञ छे कृतज्ञ छे. वधु तो शुं कहुं, संसारमां जेटलां गुणो कडेवाय छे ते अधी अमारा अभयकुमारमां छे. "

[सं०] इत्थं मंत्रिवचनादभयकुमारगुणान् श्रुत्वा आर्द्रकुमारः पितुराज्ञां समादाय मंत्रिणं प्रत्युवाच, मामनापृच्छस्व त्वं स्वदेशं मा यासीः । तत्र मच्छता त्वयामयं प्रति स्नेहद्रुमवीजतुल्यं मद्भवः श्रोतव्यमिति । ततो मन्त्र्यपि तद्वचनमस्वीकृत्य राज्ञा विमृष्टः सन् वेप्रिणां दर्शितं निवासस्थानं ययौ । अश्वाम्यदारकनृपः प्रवरमौक्तिकादीनि प्राभू-
तान्यर्पयित्वा तथा स्वंपुरुषं तं मन्त्रिणञ्च श्रेणिकपार्श्वे प्रेषीत् ।

[हिन्दी] इस प्रकार अमात्य के वचन सुनकर आर्द्रकुमारने पिता से आज्ञा लेकर मंत्री को प्रत्युत्तर दिया, हे अमात्य! तुम मुझसे बिना पूछे अपने देश मत जाना। वहां जब आप जाओ तब महाराजकुमार अभयकुमार के प्रति मेरे प्रेम के

बीज रूप वचनों को सुनकर जाना। तब उस मंत्रीने भी उनके वचनों को स्वीकार करके ऐसा ही कहंगा, ऐसा कहा, फिर राजा आर्द्रक के नौकरों द्वारा प्रदर्शित अपने निवासस्थान में चला गया। अब कुछ दिनों के बाद आर्द्रक राजाने मोतियों आदि से युक्त उपहार सामग्री को देकर उसके साथ अपने पुरुषों को रक्षार्थ देकर श्रेणिक राजा के पास भेजा। तब आर्द्रकुमारने भी अभयकुमार के लिये उपहार सामग्री प्रवाल, मौक्तिक आदि अनुपम वस्तुएं भेजी।

(सु०) आ प्रभाष्ये अमात्यनां वचनो सांभजीने आर्द्रककुमारो पितानी आज्ञा लडने मंत्रीने जवाप आया के 'हे मंत्रीज, तमे मने मठ्यां वगर तमारो देशमा जशो नदिं तमे ज्यारे ज्यो त्यारे महाराजकुमार तरङ्गनो मारा प्रेमनो संदेशो सांभजीने जन्ते.' मंत्रीज्ये तेनां वचनो मान्य राभी 'अम ज करीश' अम कहुं अने पछी राजाना नोकरेज्ये अतावेला पीताना निवासस्थानमां आल्यो गयो।

थोडा दिवसे पछी आर्द्रक राजज्ये सायां मोती साथेनी भेटनी सामग्री श्रेणिक राजा भाटे ते मंत्रीने आपी, अने तेनी साथे पीतानां माणसे तेनुं रक्षायु करवा भाटे मोकल्यां। आर्द्रककुमारो पणु अलयकुमारने भाटे भेट रुपे प्रवाल, मोती वगैरे अनुपम वस्तुज्यो मंत्री साथे मोकली।

[सं०] अथ स पुमान् मंत्रिणा सार्द्धं राजगृहपुरं गत्वा श्रेणिकाय अभयाय च प्राभृतान्यर्पयामास । तथा नृपपुत्र आर्द्रकुमारस्त्वया सह मैत्र्यं कर्तुमिच्छति इत्यभयाय मंत्री संदेशमुवाच । तदा जिनशासने कुशलोऽभयः स्वचेतसि इत्यचिन्तयत्, निश्चितं स कुमारो विराधिसश्रामण्यन्वादनार्थेषु जातोऽस्ति । परं स राजपुत्रो महात्मा नियमाशासकमभ्याऽस्ति यतोऽभय्य-द्रभक्ष्यानां तु कदापि मया सह मैत्र्यभिलाषो न भवेत् ।

[हिन्दी] इसके बाद मंत्रीने उन पुरुषो के साथ राजगृही नगरी में जाकर राजा श्रेणिक को व राजकुमार अभयकुमार को सारी भेट में प्राप्त उपहार सामग्री भेट की तदन्तर कुशल सभाचारों के साथ अभयकुमार को " आर्द्रककुमार तुम्हारे साथ मित्रता करना चाहता है " यह सन्देश सुनाया। अभयकुमार जिनमत के अन्दर अत्यंत कुशल था उसने यह सन्देश सुनकर अपने मनमें विचार किया। निश्चय से यह आर्द्रकुमार भय है, परन्तु पूर्वजन्म में अपने किसी चारित्र्य में विराधना है,

इससे यह अनार्यजाति में उत्पन्न हुआ है। मालूम होता है कि निश्चय से यह राजपुत्र महात्मा है, और निकट मवि है, क्योंकि अभव्य और दूरभव्य इन दोनों को मेरे साथ मित्रता की अभिलाषा न हो सकती है।

[शु०] त्वार पछी भंत्री ते रक्षकी साथे पौताना राजगृही नगरमां गथे अने राज् अश्लिडने तथा राजकुमार अलयकुमारने पधी भेटो-के के तेने भगी हुती, अक अक करीने आपी अने कुशण समाचार संभ-णाव्या. पछी अलयकुमारने, आद्र'ककुमार तमारी साथे मित्रता छिछे छे अेम कहुं. अलयकुमार जिनमतमां अत्यंत कुशण हुता, तेभाणे आ स'देशी सांभणीने पौताना मनमां विचार कर्यो के नककी आ आद्र'ककुमार भव्य छे, परंतु पूर्वजन्ममां तेणे कोठं आरिन्धमां विराधना करी छे तेथी तेनो अनार्यजातिमां जन्म थयो छे. लागे छे के नककी आ राजपुत्र महात्मा छे अने निकटमवि छे, कारणु के अभव्य अने दूरभव्य अे जेने भारी साथे मित्रता करवानी अभिलाषा न थाय."

[स०] तस्मात्केनाप्युपायेन तं जिनधर्मानुरक्तं विधाय धर्ममार्गं प्रवर्तयिष्यामि । तत्र चायमुपायोऽस्ति प्राश्नतच्छलेन यदि त्वार्हतप्रतिमां प्रषयामि, तद्वर्शनाद्यदि तस्य जातिस्मरणज्ञानमुत्पद्यते तदेष्टसिद्धिः स्यात् । इत्युपायं विचिन्त्य छत्रसिंहासनादिप्राति-हार्यविराजितां रत्नमयीं प्रथमजिनेन्द्रप्रतिमां मञ्जूषामध्ये धृत्वा तदग्रे सकलानि धूपधं टिकादिदेवपूजोपकरणानि मुमोच ततस्तद्द्वारे तालकं दत्त्वाऽभयो निजमुद्रया जं मञ्जूषां मुद्रयामास । अथ क्रियद्भिर्वापरेः श्रेणिको नृपस्तमार्द्रकं सत्पुरुषं त्रिपालापपूर्वकं प्रमूतैः प्रामूतैः सह विमर्जवत् ।

[हिन्दी] इसलिये किसी भी उपाय से उसे जिन धर्म में अनुरक्त करूं और जिन मार्ग में प्रवृत्त करूंगा। फिर उसने सोचा कि मैं भेंट के बहाने उसे अरि-हंत की प्रतिमा भेजूं जिसके दर्शन करने से उसे पूर्वजन्म का जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो जायगा। जातिस्मरण ज्ञान से प्रतिबोध मिलेगा। ऐसा विचार कर उसने रत्नमयी श्री आदीश्वर भगवान की प्रतिमा छत्रमार्मंडल प्रमुख आठ प्रातिहार्य धुसक पेट्टी में सिंहासन पर बैठाकर उसमें उनके आगे धूपबत्ती, केसर, आरती, घंटिका आदि पूजा के उपकरण रखकर पेट्टी बन्द करके ताला बन्द कर दिया। तदनन्तर

उसके उपर अपनी मोहर छाप लगा दी। अब कुछ दिनों बाद श्रेणिक राजाने आर्द्रक के पुरुषों को स्वयं सत्कार पूर्वक भेंट आदि देकर विदा किया।

(१०) भाटे कोषपिण्ड उपाये हुं तेने जिनधर्मभां प्रीतिवाणो कर्त्तुं तथा जिनमार्गभां प्रवृत्त कर्त्तुं। पछी तेणु विचारुं के हुं भेटने पडाने तेने अरिहंतनी प्रतिभा भोक्खुं, जेना दर्शन करवाथी तेने पूर्वजन्मनुं जतिस्मरणुं ज्ञान उत्पन्न थरी। जतिस्मरणुं थरी जवाथी तेने प्रतिबोध भणसे। जेवो विचार करीने तेणु रत्नमयी श्री आदीश्वर भगवाननी भूति छत्र-भाभंडल प्रभुअ आठ प्रातिहार्याणी पेटीमा सिंहासन उपर प्यसाडीने अने तेमनी सामे धूपसणी, केसर, आरती, घंटडी वगैरे पूजनो सामान राखीने पेटीने ताणुं मारी सील करी, तेनी उपर पोतानी भडोरनी छाप लगावी दीधी। थोडा दिवसो पछी श्रेणिक राजाने आर्द्रक राजाना माणसेने पुण्य सत्कार पूर्वक भेंट वगैरे आपीने विदाय करी।

[सं०] अभयोऽपि तां पेठी तस्य हस्ते समर्प्यं तं सत्कृत्य अमृत-तुल्य-वाण्या इत्युवाच, " एषां पेठी आर्द्रकुमारस्य पुरस्तादुपहीवयतां तथा तस्य मन्वन्धोरिदं वक्तव्यं स्वया एकान्तप्रदेशे एकाकिना स्थित्वा इयं पेठी स्वयमुद्घाट्य तदन्तर्गतं वस्तु स्वयं दृष्टव्यमन्यस्य कस्यचिन्न दर्शनीयम् । ततोऽभयोक्तं वचोङ्गीकृत्य स पुमान् स्वपुरं ययी, तथा तानि च प्राभृतानि स्वस्वामिपुत्राय चापेयामास । तथार्द्रकुमारायाभयोक्तसंदेशमाचरुषी ।

[हिन्दी] अभयकुमार ने भी आर्द्रक के राजपुरुषों में प्रधान पुरुष का रूप सत्कार कर उसे वह पेटी देकर अमृत तुल्य वाणीसे आर्द्रककुमार के लिए सन्देश दिया। वह पेटी आप आर्द्रकुमार को दें दें और उन्हे मेरा वह सन्देश कहें कि हे मेरे मित्र! तुम इस पेटी को स्वयं ही अकेले और एकान्त प्रदेश में खोलना इसके भीतरकी वस्तु का दर्शन करना पर इसे किसी को दिखाना नहीं। इसके बाद वह राजपुरुष अभयकुमार का वचन स्वीकार कर अपने नगरको गया। जो जो भी वस्तुएँ भेंट स्वरूप श्रेणिक राजाने भेजी थी। उन सब को उसने स्वामी और स्वामीपुत्र को दे दी तत्पश्चात् उसने आर्द्रकुमार से अभयकुमारका सन्देश कह सुनाया।

[गु०] अलयकुमार पशु आर्द्रक राजना माणुसोमांना मुप्य माणुसना पुण सत्कार करीने तेने ते पेटी आपी, अमृततुल्य वाणुधी आर्द्रककुमार माटेना सदेशो आध्या. अने कल्युं के आप आ पेटी आर्द्रक-कुमारने हेल्ले अने तेभने भाशे सदेशो कहेल्ले के “हे मित्र! तुं आ पेटी पोते अेकलो अेकान्तमां जालजे, तेनी अंहरनी वस्तुनुं दर्शन करजे पशु अे कोर्धने अतावीश नडि.” पछी ते राजपुरुष अलयकुमारने सदेशो लघने पोताना शरैरमां गयो. जे जे वस्तुयो श्रेष्ठिक राजये तेनी साथे बेट स्वर्पे मोकली हती ते अधी तेणे पोताना राज तथा राजकुमारने आपी दीधी. त्थारपछी तेणे आर्द्रककुमारने अलयकुमारने सदेशो कडी संभणाव्यो.

[सं०] ततः कुमारः एकान्ते स्थित्वा तां पेटीमुव्घाट्य तन्मध्यस्थात्तमस्यद्योतकारिणीं तां श्री-ऋषभस्वामि-प्रतिमां दृष्ट्वा स्वचित्ते चिन्तयामास, किमिदं किञ्चिदुत्तमं देहाभरणमस्ति तद् किं मूर्ध्नि समारोप्यं कण्ठे वा हृदये वान्वत्र वा कुत्रचिदारोप्यं, क्वापीदं दृष्टपूर्वमिव मां प्रतिभासते परं स्मृतिपथं नायाति, इत्थमत्यर्थं चिन्तयत आर्द्रकुमारस्य जातिस्मरणजनिका मूर्धा समजनिष्ट तद्दुत्पन्नजातिस्मरणः स कुमारः संग्राहचेतनः सन् स्वयमेव एवं निजपूर्वभवकथां चिन्तयामास । तथाहि—

[हिन्दी] आर्द्रकुमारने एकान्त में जाकर उस पेटी को अलयकुमार के कथनानुसार खोलीं। पेटी के मध्यमें प्रकाशमान श्री ऋषभस्वामी की उस प्रतिमाका दर्शनकर अपने मनमें विचारने लगा। जरे! यह क्या है? यह तो कोई उत्तम गहना है, जिसें मस्तक पर, कण्ठ पर या हृदय पर पहिनना चाहिये। यह तो ऐसा लगता है कि मैंने पहिले कहीं देखा हो। अब मुझे याद नहीं आ रहा है कि इसें पहलीं चार कहां देखा था। इस तरह वह मनमें विकल्पकर उसें याद करने लगा। उसी समय पूर्वभव को स्मरण दिलानेवाली मूर्छा उसें आ गयीं और वह बेसुध होकर जमीन पर गिर पड़ा। जब उसकी मूर्छा हठी, उसें चेतनता प्राप्त हुई तब उसें अपने पूर्वजन्म का जातिस्मरण हो गया। तब वह स्वयं ही अपने पूर्वभव की कथा इस प्रकार कहनें लगा।

[गु०] पछी आर्द्रककुमारने अलयकुमारना सदेशा मुण्य ते पेटी अेकान्तमां लघने जाली. पेटीनी अंहरनी प्रकाशमान श्री ऋषभस्वामीनी

ते प्रतिभानुं दर्शन करीने ते पोताना मनमां विचारवा लाग्यो :
 'अरे, आ शुं ? आ तो कोठं उत्तम धरेलुं छे, जेने माथा उपर,
 गणामां के हृदय उपर धारलु करवुं जेष्ठमे. आ तो जेले जेवुं लागे
 छे के में पडेलां कयांक जेवुं होय. भने अत्यारे याद नथी आवतुं के
 आने में पडेलां कयां जेयेल छे. आ रीते ते मनमां संकल्प-विकल्प
 करतो तेने संभारवा लाग्यो. जेज वपते तेने पूर्वभवतुं स्मरण करवावा-
 वाणी भूछां आवी गढं अने ते ज्येश्ठ थरने जमीन उपर पडी
 गयो. ज्यारे तेनी भूछां उठी अने तेने शुद्धि आवी त्यारे तेने पोताना
 पूर्वभवतुं अतिस्मरण ज्ञान थयुं, हवे ते पोते ज पोताना पूर्वभवनी
 कथा आ प्रमाणे कहेवा लाग्यो.

आर्द्रकुमार के पूर्वभव की कथा :—

[सं०] इतो भवान्तृतीये भवे मगधदेशे वसन्तपुरेऽहं 'सामायिको नाम' कुटु-
 म्ब्यभवं । मम बन्धुमती भार्याऽभूत् । एकदा सुस्थिताचार्यसमीपे तथा सह अर्हद्-
 र्ममश्रापं । ततः सभार्योऽपि अहं प्रतिबुद्धो गृहवासविरक्तः सन् तत्पार्श्वे प्रव्रज्यां
 गृहीतवान् । क्रमेण गुरुणा सह विहरन् एकस्मिन् पत्तनेऽगां बन्धुमती साध्व्यपि अपर-
 साध्वीसङ्गता तत्रागात् । एकस्मिन् ता पश्यन् पूर्वभोगान् स्मरन् अहं तस्यामनुरक्तोऽभूम् ।

[हिन्दी] इस भव से तीसरे भव पूर्व में मगध देशके वसन्तपुर में सामायिक नामका कुटुम्बी था । मेरे बन्धुमती नामकी पत्नी थी । एक बार " बहुश्रुत सुस्थिताचार्य " विहार करते २ वहाँ आये । तब हम दोनों ने उनसे व्याख्यान और अरिहंता का मार्ग सुना । इस धर्मके सुनकर हम प्रतिबुद्ध हुए । दोनों ने आचार्यश्री से विनती की और दीक्षा अंगीकार की । मेरी स्त्री तो साध्वीओं के साथ साध्वी बनी । और मैं गुरुजी के साथ रहा । पढ़लियकर गीतार्थ हुआ । इस तरह क्रमसे विहार करते करते एक बार मैं किसी शहर में गया । देवयोग से बन्धुमती साध्वी भी दूसरी साध्वियों के साथ उसी नगर में आ गयी । मैंने अपनी पत्नी को देखा । मुझे पूर्व भोग याद आये । मैं उससे अनुरक्त हो गया । मैंने उसे कामचेष्टएं दिखायी ।

[शु०] आ लक्ष्मी पड़ोसना वीज लवमां हु भगवत देशमां वसं-
तपुर नामना नगरमां साभायिक नामना गृहस्थ हुतो भारे अन्धुमती
नामनी पत्नी हुती. अेक वार “ अहुश्रुत सुस्थितायार्थ ” त्यां विहार
करता करता आल्या. त्यारे अमे अन्नेअे तेमनी पासे व्याख्यान सांभळ्युं
अने अरिहुतोना भाग विषे लक्ष्युं. आ धर्मने सांभळीने अमे प्रभा-
वित थयां. अमे अन्नेअे आचार्यश्रीने विनंती करी अने अन्नेअे हीक्षा
अंगीकार करी. भारी श्री साध्वीअेानी साथे साध्वी अनी अने हुं गुर-
छनी साथे रह्यो, अने लक्ष्मी गणीने (हुशियार) “ गीतार्थ ” थयो. आ
प्रमाणे कमे कमे विहार करतां करतां अेक वार हुं केर शहरमां गयो.
दैवयोगथी अंधुमती पक्षु पीछ साध्वीअेानी साथे ते व शहरमां आनी.
में भारी पत्नीने जेष्ठ. अने पडेलीं भोगवेला भोगे याद आल्या अने
अने भारी पत्नीमां मोह थयो. में तेने धशारा कर्था.

[सं०] तच्चान्यसाध्व्यौ आरुण्यत् । साऽपि प्रवर्तिन्ये आचरन्व्यौ सा पुनर्वन्धुमत्यै
आचारव्यौ । तदा बंधुमती विषण्णा सती प्रवर्तिनी प्रोवाच “ एष गीतार्थोऽपि यदि
मयादां लब्ध्वेत तदा का गतिः ? ” असीं मां देशान्तरमपि यावच्छ्रोष्यति तावन्मोह-
प्रभावान्मयि रागं न त्वक्ष्यति तस्मात् हे भगवति ! अहं निश्चितं मरणं प्रपत्स्ये येन
नास्य नापि मे शीलस्खलनं जायेत । इत्युक्त्वा साध्वी अनशनं कृत्वा शुद्धभावतया
प्राणांस्तत्याज देवत्वं च प्राप ।

[हिन्दी] उसने किसी अन्य साध्वी से यह वृत्तान्त कहा, साध्वीने प्रवर्तिनी
को यह बात बताई, प्रवर्तिनी ने बन्धुमती को सुनाया । तब बन्धुमती बड़ी दुःखी
हुई । उसने प्रवर्तिनीसे कहा, “ यह गीतार्थ होकर भी अगर पर्यादा का उल्लंघन करे
तो क्या उपाय है ? ” मैं अगर देशान्तर में भी चली जाऊगी तो भी मोह प्रभाव
से मुझमें अनुरक्त वह अपने चरित्र को छोड़ देगा, अतः हे भगवती ! मैंने मृत्यु
का वरण करना निश्चित किया है । जिस से इसका और मेरा शील खंडित न हो ।
इतना कहकर उस साध्वीने अनशन करके शुद्ध भावना से प्राणों को छोड़ दिया
और वह देवत्वको प्राप्त हो गयी ।

(शु०) आ वात तेशे पीछ साध्वीने कही. ते साध्वीअे प्रवर्तिनीने
आहकीकत कही. तेजे अंधुमतीने कहुं त्यारे अंधुमती अ हुःपी थर्ष

अने तेणे प्रवर्तिनीने कहुं के, "गीतार्थ होवा छतां पणु जे ज्ये भर्थादनुं
उल्लखनं करे तो तेना शुं उपाय? हुं अगर पीज् देशमां थाकी
जड तो पणु मोडधी माराभां अनुरक्त थयेल ते पोतानुं चारित्र छोडी
देशे. माटे हे भगवती. मे मृत्युनुं शरणु देवाने निश्चये कर्यो छे जेधी
तेनुं तथा मारुं शील अडित न थाय." आठलुं कडीने ते साध्वीज्ये
अनशन करीने शुद्ध भावनाधी पोताना देहुने छोडी दीधा अने देवत्व
प्राप्त कर्युं.

[सं०] ततस्तां मृतां श्रुत्वा मया ह्यचिन्तितं सा महानुभावा निश्चितं व्रतमङ्ग-
भयान्मृता अहं पुनर्मग्नस्ततो ममापि जीवितेन अलं तदाहमप्यनशनं कृत्वा विपद्य देवो-
ऽभूवं ततश्च्युत्वाहाराय देशे धर्महीनः समुत्पन्नोऽस्मि । साम्प्रतं यो मम प्रतिबोधकः स
मे चन्दुः स एव च गुरुरस्ति केनापि भाग्योदयेनाभयकुमारमंत्रिणाऽहं बोधितः परम-
द्यापि मंदभाग्योऽस्मि यतस्तं द्रष्टुमसमर्थः तस्मात्पितरमनुज्ञाप्यार्यदेशे गमिष्यामि यत्र
मे गुरुरभयकुमारोऽस्ति ।

[हिन्दी] इसके पश्चात् मैंने उस साध्वी को मरा हुआ सुनकर विचार किया,
अहो! वह महानुभावा अपने व्रत भंग के भय से मर गई और मैं चरित्र से विच-
लित हो गया. अतः अब मेरे जीने से क्या? ऐसा विचारकर मैंने भी अनशन
करके मरकर देव बना। देवत्व पूर्ण करने के बाद जब मैं धर्म हीन अनार्य देश में
पैदा हुआ हूँ। अब मुझे प्रतिबोध देनेवाले अभयकुमार मेरे मित्र और गुरु हैं, किसी
भाग्योदय से मैं अभयकुमार से प्रतिबोधित हुआ हूँ। पर अभी भी मैं मन्द भाग्य-
वाला हूँ क्योंकि उनका दर्शन नहीं कर सका हूँ। अतः पिताजी से आज्ञा लेकर
मैं आर्यदेश में जाऊंगा, जहाँ मेरे गुरु अभयकुमार हैं।

[शु०] पछी ते साध्वीना भरणुना सभाचार सांभजीने में विचार
कर्यो: 'अहो! ते महासाध्वी पोताना व्रतभंगना लयथी मरी गछ
अने हुं चारित्रथी विखलित थछ गयो. उवे मारे पणु लवीने शुं करवुं छे?
ज्येवा विचार करीने हुं पणु अनशन करीने मरी गयो अने देवत्वने
प्राप्त्ये. देवपणुं पुरुं कर्यो पछी उवे हुं धर्महीन अनार्य देशमां जन्म
प्राप्त्ये छुं. उवे मने प्रतिबोध आपराजाणा अभयकुमार मारा मित्र

तथा गुरु छे. डोहं क भारा भाग्योदयथी न मने अलयकुमारै प्रतिषेध
आप्यो छे पशु लुल्ये हुं दुर्भाग्यी छुं. डेभके मने तेभनां दर्शन नथी
थई शक्यां. माटे पिताळनी आज्ञा लईने हुं भगवदेशमां नईश न्यां
भारा गुरु अलयकुमार छे.

[सं०] इत्थं मनोरथं कुर्वन् आदिमार्हतः प्रतिमां पूजयन् आर्द्रकुमारो दिवसाश्रति-
वाहयति स्म । एकदा कुमारो नृपमेवं व्यवजिज्ञपत् ! हे तात ! स्वमित्रमभयकुमारं द्रष्टु-
मिच्छामि । आर्द्रकनृपोऽवादीत्, हे वत्स ! त्वया तत्र गमनेच्छा न कर्तव्यास्माकमपि
स्थानस्थितानामेव श्रेणिकेन सह मैत्र्यमस्ति । तदा मित्रहत्या निवद्धोऽभयसंसर्गं प्रयु-
त्कंठितश्चार्द्रकुमारोऽपि न तस्थौ न च जगाम । तथा स आसने शयने याने भोजने-
ऽन्यक्रियासु चाभयकुमारेणाभितां दिशं नेत्रयोग्रे चकार, पुनः किटशो मगधदेशो राज-
गृहपुरं च किटक् तात्रगमने कस्को मार्ग इत्थं पार्श्ववर्तिनो जनान् पप्रच्छ ।

[हिन्दी] इस तरह मनोरथ करके आदिनाथ भगवान की प्रतिमा का पूजन
करता हुआ, आर्द्रकुमार अपने दिन बिता रहा था । एक बार कुमारने राजा से
निवेदन किया, कि हे महाराज ! मैं अपने मित्र अभयकुमार को देखना चाहता हूँ ।
आर्द्रक राजा बोला, " हे वत्स " तुम्हें वहाँ जाने की इच्छा नहीं करनी चाहिये ।
हमारी भी इसी स्थान पर रहकर ही श्रेणिक राजा से मित्रता है । तब मिता द्वारा
निवद्ध वह आर्द्रकुमार विचलित हो गया । न तो वह वहाँ जा सका और न वह
ठहर ही सका । अर्थात् अब उसका मन नहीं लग सका । सोते, बैठते, खाते-पीते
और कोई भी काम करते वक्त वह अभयकुमार को याद करने लगा । वह राजगृही
के मार्गकी तरफ उत्कण्ठित दृष्टि से देखता रहे, जो भी लोग मिलें उनसे मगध-
देशमें राजगृहपुर कैसा है ? वहाँ जाने का कौनसा मार्ग है ? यह पूछता रहे ।

[शु०] आ प्रभाणे मनोरथं करीने आदिनाथ भगवाननी प्रतिमानुं
पूजन करतो आर्द्रकुमार पोताना दिवसे वितावी रह्यो हुतो. अेकवार
कुमारै राजने निवेदन क्युं, डे " महाराज ! हुं भारा मित्र अलयकुमारने
मणवा आहुं छुं. " आर्द्रक राजने कहुं: " हे वत्स ! तारे त्यां न्यानी
इच्छा नही करवी जेईये. भारी पशु अडीं रखां रखां न श्रेणिक राज
साथे मित्रता छे. " पिताये ना पाउवाथी आर्द्रकुमार विचलित थई

गयो. न तो ते त्यां जर्घ शक्यो के न त्यां ने त्यां रही शक्यो. मन काममां योऽयुं नही. सूतां येसतां, भाता, पीता अने कोर्ध पणु काम करती वभते ते अलयकुमारने याद करवा लाग्यो. ते राजगृहीना रस्ता तरक उक्तंठित दृष्टिथी जेतो रहेंतो अने जे कोर्ध भाषुस भजे तेने भगवदेशमां राजगृही शरैर केनुं छे ? त्या जवानो क्यो भाग छे, वगेरे पूछतो रहेंतो.

[सं] तस्मिन्नवसरे आर्द्रकनृपो दध्यौ कदापि कुमारो मामकथयित्वैव निश्चित-
मभयसमीपे यास्यत्यतो यत्नः कर्तव्यस्ततो नृपः पञ्चसामन्तशतानि इत्यादिशतु अहा
अयं कुमारो देशान्तरं गच्छन् भवद्भी रक्षणीयः । तदा ते सामन्ता देहे छायेव तत्पार्श्वे
न त्यजन्ति स्म । कुमारोऽप्यात्मानं देहधृतमिवामंस्त । ततः सोऽभयसमीपगमनं मनसि
अवधार्य प्रत्यहमश्वलाहनभूमौ अश्ववाहनं कर्तुमारभे ते सामान्ताश्च अश्वारूढा अंगरक्षकाः
सन्तः पार्श्वे तस्थुः, कुमारोऽर्धं वाहयन् तेभ्यः किञ्चिदग्रे गन्वा न्यवर्त्तत ।

[हिन्दी] उसकी ऐसी चेष्टाएं देखकर आर्द्रक राजा को चिन्ता हुई । कहीं यह कुमार मुझे बिना कहे ही अभयकुमार से मिलने के लिये न चला जावे, इसलिये कोशीस करना चाहिये । ऐसा सोचकर राजाने पांचसौ सामन्तों को आज्ञा दी कि आप ध्यान रखिये कि कहीं आर्द्रकुमार राजगृही तरफ न चला जाय । इसे अपनी ही सीमा में खेलने रमाने देना है । यह आज्ञा सुन पांचसौ सामन्त जिस तरह शरीर के पास छाया रहती है, उसी तरह उसके पास से नहीं हटते थे । कुमारने भी अपने को बन्दी सा ही समझ लिया । उसके बाद कुमारने सोचा कि मुझे अब अभयकुमार के समीप जाने का उपाय करना चाहिये । ऐसा विचार करके वह धुड़ दौड़ में मन लगाने लगा । कुमार जब थोड़े धर बैठकर उसे दौड़ाता तो ५०० सामन्त भी घोड़ों पर साथ रहते । तब कुमार भी उनसे आगे निकलकर लौट जाता ।

[शु०] तेनी आवी वर्तणुंके जेधने आर्द्रक राजने चिंता थर्ध के कयांक आर्द्रककुमार भने कछा विना न अलयकुमारने भणवा आल्यो न नय. जे माटे कंठके प्रयत्न करवो जेधये. आवो विचार करीने राजये पोतान्ता पांचसो सामंताने आज्ञा करी के आर्द्रककुमार राजगृही आल्यो न नय तेनुं ध्यान राख्जे. तेने आपणी हठमां न रहेंवा देवा छे. आवी

आज्ञा सांभलीने ऐ पांचसो जेवी रीते शरीरनी साथे पडछाये रहे तेम तेनी आसपास रहेवा लाग्या. कुभारे पशु पोतानी नतने केही जेवी अनुभरी. त्यार पछी कुभारे विचार कर्यो के- भारे हुवे अलयकुमारनी पासो जवा माटे नो कोछक उपाय करयो. विचार करीने ते थोडे दौडाववाभां पोतातुं मन पसेववा लाग्यो. कुभार ज्यारे थोडा पर भेसीने तेने दौडावतो त्यारे ऐ पांचसो सामंतो पशु थोडा पर तेनी साथे रहेता. आर्द्रक-कुभार सौनी आगज नीकणी जतो अने पछी पाछे आल्यो आवतो.

[सं०] एवं चाइवं वाहयन् सोऽधिकाधिकं यथौ पुनः पुनर्व्याघ्रदयायथौ चेत्यं तेषां विश्वासमुत्पाद्यान्यदारुं कुमारी निजैः प्रतीतिमत्पुरुषैः समुद्रे यानपात्रं प्रगुणं कारयित्वा तच्च रत्नादिभिः प्रपूर्य जिनप्रतिमां च तत्रारोप्य तथैवाइवं वाहयन् दूरगमनादहृद्योभूय तद्बानपात्रमारुह्य आर्यदेशं यथौ, ततो यानपात्रादुत्तीर्य तां प्रतिमामभयकुमाराय संप्रेष्य सप्तक्षेत्रं धनान्युप्त्वा यतिलिङ्गं गृहीतवान् ।

[हिन्दी] इस तरह वह नित्य प्रति थोड़े पर घूमने लगा। यह देख सामंतोंने सोचा। राजा भ्रम में पड़ गया है। यह कुमार तो नहीं जायगा। इस तरह ५०० सामन्तों के हृदय में कुमार के प्रति विश्वास उत्पन्न हो गया। वे लापरवाह हो गये। तब एक दिन समुद्र के किनारे स्थित जहाजवालों से कुमार बात करके आया। दूसरे दिन वह प्रतिमाजी की पेटी रत्नों से भरकर लेकर के जहाज में बैठे आर्य देशमें गया।

वह मनमें सोचने लगा कि मैं राजगृही कब पहुंचूंगा, चारित्र के बिना दिन व्यर्थ जा रहे हैं, ऐसा जानकर उमने प्रतिमाजी को तो अभयकुमार के पास भेजी और अपने धन को सात क्षेत्रोंमें लगा दिया तब वह स्वयं चारित्र लेने को तैयार हो गये।

[जु०] आ प्रभाणे ते रोज थोडा उपर इरवा जवा लाग्यो आ जेधने सामंतोऐ विचार्युः राज भ्रमभां पडी गया छे. कुभार तो क्यांय नय तेवु लागतुं नथी. आ प्रभाणे पांचसोऐ सामंतोनां मनमां कुभारनी उपर विश्वास भेसी गया अने तथी तेज्यां भेपरवां बनी गया. पछी ऐक दिवस कुभार समुद्रने किनारे नांगरेवा वहालुवाणा साथे वातो करवा गया अने ओजे दिवस प्रतिमाछवाणी पेटीमा रत्नो भरी लछने वहालुभां भेसीने आर्यदेशमां आल्यो गया. ते मनमां विचारवा

लाग्यो के डुं क्यारे राजगृही पडोंचीश ? दीक्षा लीधा वगरना दिवसे नकाभा नय छे अम समज्जने तेण्णे प्रतिमाळने अभयकुमारनी पासे भोडली दीधी, पोते साथे आवेला धनने साते क्षेत्रभां वडोंची दीधुं अने पोते दीक्षा लेवानी तौयारी करवा लाग्यो.

[सं०] स च यावत्सामापिकमुद्धारयितुमारेमे तावदाऽऽकाशस्थितया देवतया उच्चैः स्वरेणोचे, यद्यपि त्व महासत्त्वस्तथापि सांप्रतं दीक्षां मा ग्रहीः । अद्यापि ते भोगफले कर्मास्ति तद् भुक्त्वावसरे व्रतं गृहाण, यतो भोग्यं कर्म तीर्थकृतामप्यवश्यं भोक्तव्यं, तस्माद्धे महन् ! तेन व्रतेनालं, यद्गृहीतमपि त्यक्ष्यते, यथा तेन भोजनेन किं यद् भुक्तमपि वम्यते, इत्थं बहुधा निषिद्धोऽप्यार्द्रकुमारः स्वपौरुषमङ्गीकृत्य देवीवाचमनादस्य स्वयं दीक्षामाददे ।

[हिन्दी] वह जब तक सामायिक उच्चारण करे तब आकाशमें स्थित देवतामें उच्च स्वर में कहा, यद्यपि तुम महासत्त्व हो तो भी इस समय दीक्षा मत लो । अभी भी तुम्हारे भोग्य कर्म अवशिष्ट हैं । पहले उन्हें भोग लो फिर व्रत लेना, क्योंकि भोग्य कर्म तो तीर्थकरों को भी अवश्य ही भोगने पड़ते हैं । अतः हे महान् ! दीक्षा मत लो । जिस दीक्षा को लेकर फिर तोड़ना पड़े वह दीक्षा किस काम की । जिस भोजन को खाकर आहार पचे नहीं वह आहार क्या काम का ? किन्तु आर्द्र-कुमार को इस समय जोश चढ़ा हुआ था, बार बार मना करने पर भी देवी के वचनों का अनादर कर उसने दीक्षा ग्रहण करली । उस आर्द्रकुमारने मुनियों के योग्य तीक्ष्ण व्रत का पालन प्रारम्भ कर दिया ।

(गु०) ते सामायिकतुं उच्यारण्युं करे ते पडोला आकाशभां रडोला द्वाव्ये तेने वाच्ये स्वरे कथुं: "जे के तुं महासत्त्व छे, तो पणुं उभणुं दीक्षा न ले. उल्ल पणुं तारा भोग्यकर्म भाडी छे. पडोलां तेने भोगवी ले, पडोली दीक्षा लेजे; कारणुके भोग्यकर्म तीर्थ'करोने पणुं अवश्य भोगववां पडे छे, माटे हे महान् एव, तुं दीक्षा न ले. जे दीक्षाने लडने पडो तेने तोडवी पडे, ते दीक्षा शा कामनी ? जे भोजन आवाधी आहार पचे नही ते भोजन क्युं शा कामतुं ? पणुं आर्द्रकुमारने तो अत्यारे जेश

शुभं भवतुं, अष्टमे वारं वारं ना पाठवा छतां देवानां वयनोनीं अथवाणुना करीने तेले हीक्षा अहंशु करी लीधी. अने मुनिअने योग्य तीक्ष्ण प्रतनुं पालन करवानुं शः करी लीधुं.

[सं०] स प्रत्येकबुद्धो मुनिस्तीक्ष्णं व्रतं पालयन् भूमंडले विचरन् अन्यदा वसन्त-पुरपत्तनं प्राप्य कस्मिंश्चिद्देवकुले कायोत्सर्गेण च तस्थौ । इतश्च तस्मिन्नमरे देवदत्तो नाम महाश्रेष्ठयभूत् तस्य धनवती नाम पत्नी आसीत् । अथ स बन्धुमतीजीवो देवलोकान् गच्छन् श्रीमती नाम अद्भुतरूपा तयोः पुत्री समजनि । सा च धात्रीमिलीत्यमाना क्रमेण रजःक्रीडोचितं वयं प्राप ।

[हिन्दी] एक बार वह विहार करता करता वसन्तपुर नामक ग्रह में आया । वहां किसी देश मन्दिर में कायोत्सर्ग ध्यान में बैठा । इस अवसर में बन्धुमती का जीव देवलोक से च्युत होकर उसी नगरमें देवदत्त शेट के घर में लड़की के रूप में उत्पन्न हुआ । शेटने उसका नाम श्रीमती दिया । अनुक्रम से धाय द्वारा लालित पालित होकर सात बरस की हो गई । एक बार यह अपनी सहेलियों का साथ लेकर खेलती हुई उसी मन्दिर के पास गई, जहां आर्द्रकुमार तपस्वी वेशमें काउत्सर्ग ध्यानमें स्थित थे ।

[शु०] अष्ट वारं ते विहारं करोति करोति वसन्तपुर नामे शहरं भां आये. त्यां कोठं देवमन्दिरं भां कायोत्सर्गं ध्यानं भां भेठो. आ वपते अंधुमतीने. एव देवलोकाधी च्युतं यदने ते ज शहरं भां देवदत्त शेटना घरं भां हीकरी तरीके जन्म पाये. शेटं तेनुं नाम श्रीमती पाठुं. काल-कमे धात्रे द्वारा पालन-पोषण पायेली ते पातानी सपीअने साथे लहने रमती रमती ते ज मन्दिरना पासे गठ के ज्यां आर्द्रकुमार काउत्सर्ग ध्यानं भां भेठो भवतो.

[सं०] एकदा तत्र देवकुले पौरकन्याभिर्बुक्ता श्रीमती कन्या पतिवरणक्रीडया रन्तुमाधयौ । तदा सर्वाः कन्या भर्तारं वृणुतेत्युचुस्ततः कयाऽपि कोऽपीत्येवं स्वरुचि-वरा वृताः श्रीमत्योक्तं हे सख्यो ! मया तु अयं पूर्यो वृतः । [इति प्रथमव्याख्यानम्]

[हिन्दी] वहाँ एक बार ये सहेलियां और श्रीमती मिलकर "पतिवरण" का खेल खेलने लगी। तब सब कन्याओंने अपनी रुचि के अनुकूल 'पतिवरण' किया। जैसे किसीने यक्ष को वरा, किसीने वृक्ष को वरा, किसीने स्तंभ को वरा, किसीने कुल, किसीने कुल वरा। इस पर श्रीमती नामकी कन्या बोली हे सखियों! मैंने तो इन पूज्य साधुजी को ही वर लिया हूँ।

नोट:— [यहाँ प्रथम व्याख्यान समाप्त हुआ।]

[गु०] त्यां अेक दिवस श्रीमती अने तेनी साहेलीअे 'स्वयंवर' नी रमत रमवा लागी. णधी कन्याअेअे पोतपोतानी रुचि प्रमाणे पति पसंद कर्या. जेभके केअेअे यक्षने, केअेअे वृक्षने, केअेअे स्तंभने, केअेअे केअे, केअेअे कांठ अेम सौअे पोतपोताना पति पसंद कर्या. अेटअे श्रीमती नामनी कन्या आली के हुं तो आ पूज्य साधु महाराजने ज पति तरीके पसंद करे छुं.

[पहिला दिवसनुं व्याख्यान समाप्त]



अथ द्वितीय-व्याख्यान-प्रारम्भ ।

[सं०] अथ साधु वृत्तं साधु वृत्तमिति देवता प्रोवाच । पुनर्गर्भितं तन्वाना सा एव देवी तत्र रत्नान्यवर्षत श्रीमती गर्जितादिता तस्य मुनेः पादेऽलगतं, स मुनिः क्षणमात्रं स्थित्वाचिन्तयत्, इह तस्थुषो ममानुकूल उपसर्गोऽभूत्, अतोऽत्र न स्थेपमिति विचिन्त्य सोऽन्धव्रागात् । तदा अस्वामिकं धनं राज्ञ एवेति निश्चयं कृत्वा तानि रत्नान्यादातुं राज्ञा तत्राजगाम । राजपुरुषास्तद् द्रव्यस्थानं नागसंकुलं ददशुः, देवतया चोक्तं एतद् द्रव्यं तस्थे कन्यायै मया वरके प्रदत्तमस्ति ।

[हिन्दी] ठीक ही वरण किया । ठीक ही वरण किया । इस तरह आकाश-मार्ग से देववाणी हुई और रत्नों की वर्षा हुई । श्रीमती इस गर्जन से डरकर मुनिराज के पांव पकड़कर बैठी । मुनिने मनमें विचार किया कि यह सुखकारी उपसर्ग हुआ है । यह चरित्र में विघ्न डालने वाला है । अतः यहां रहना उचित नहीं, ऐसा विचार करके उसने वहां से विहार किया, क्योंकि मुनि के प्रतिबन्धन नहीं होता है । रत्नों की वर्षा से प्राप्त धन को लेने के लिये वहां का राजा वहां आया, राजपुरुषोंने देखा धन के सांप लिपटा हुआ है । यह देख उस धन को लेने की उनकी शक्ति नहीं चली । तब राजाने कहा कि यह धन किसका है ? तब आकाश से देववाणीने उत्तर दिया कि वह धन मैंने श्रीमती के विवाह के वास्ते दिया है ।

व्याख्यान पीछे

[शु०] " पसंद्गी परोपर छे " " पसंद्गी परोपर छे " आ प्रभाण्णे आकाशवाणी थछ अने आकाशमांधी रत्नोनी वर्षा थछ. श्रीमती आ गर्जनाथी डरीने मुनिराजना पग पकडीने थ्येसी गछ. मुनीअे मनमां विचार कर्यो के आ सुखकारी उपसर्ग थयो छे अने ते चरित्रमां विघ्न-कर्ता छे; तेथी हवे अहीं रहैपुं योग्य नथी. अये विचार करीने तेण्णे त्यांथी विहार कर्यो. कारण्णे मुनीआये कोछ अंधनमां रहैपुं उचित नथी. रत्नोनी वर्षाथी भणैपुं धन लेवा भाटे त्यां शहरोना राज आये. राजपुरुषोअे अेपुं के ते धनने साप वीटणायेसा छे. आथी ते धन लेवानी

तेमनी डिंमत वाली नहीं. राज्याये कहुं के आ धन डोनुं छे? त्यारे आकाशवाणी थरु के “आ धन मे श्रीमतीना विवाह भाटे आप्युं छे”

[सं०] इति श्रुत्वा नृपो विलक्षस्मन् स्वस्थानं ययौ । ततस्तत्सर्वं धनं श्रीमती-
पिता श्रेष्ठी जग्राह । अथ क्रियता कालेन श्रीमतीं परिणेतुं बहवो वरा अढौकन्त ।
तत्स्वरूपं पित्रा पुत्र्यै उक्तं तदा श्रीमती जग्राह, हे तात ! यो महर्षिर्मया वृतः स
एव मम वरः तद्वरणे देवता यद् द्रव्यमदात् तद् द्रव्यं गृह्यता स्वयापि तदनुमतमेव
ततस्तस्मै मां कल्पयित्वान्यस्मै दातुं नार्हसि उक्तं च :—

“सकृज्जल्पन्ति राजानः, सकृज्जल्पन्ति साधवः ।

सकृत्कन्या प्रदीयन्ते, शीष्येतानि सकृत् सकृत् ॥”

[हिन्दी] यह सुन कर राजा अपने निवास स्थान में चला गया, और वह सारा धन श्रीमती का पिता ले गया । तदनन्तर कितने समय बाद श्रीमती जब विवाह योग्य हुई तो सैंकड़ों स्थानों पर कन्या के योग्य वर की तलाश सेट नें प्रारम्भ की । यह देख कन्या श्रीमती नें अपने पिता से कहा “हे पिताजी ! जिस महर्षि का मैंने खेल खेलते वरण किया था वही मेरा पति होगा, क्योंकि उसी के वरण में देवी जो द्रव्य दिया है वह आप लाये है । उस समय आपकी भी इसमें स्वीकृति थी । इस तरह एक बार कन्यादान की कल्पना करके अब आप दूसरे वर को मुझे देना चाहते हैं, यह योग्य नहीं है, क्यों कि कहा है :—

राजा एक बार कहते हैं, साधु एक बार ही आदेश देते हैं । इसी तरह कन्यादान भी एक ही बार किया जाता है, क्यों कि ये तीनों एक ही बार होते हैं ॥”

[शु०] आ सांभलीने राजा पोताना भउसे आल्या गये अने ते अधुं धन श्रीमतीना पिता लरु गये. त्यार पछी धरु वभते न्यारे श्रीमती विवाहने योग्य थरु त्यारे धरु न्यार्ये श्रीमतीना पितार्ये तेने लायक वरनी तपास अलापी. आ अरु श्रीमतीये पोताना पिताने कहुं: पितारु के महर्षिने हुं रमत रमयाभां वरी यूकी धुं ते न मारा पति थरी, अरु के तेने वरवा भाटे हेवतार्ये धन आप्युं छे अने ते तमे लाव्या छे, ते वभते आपनी पयु आभां संभति छती. आरी रीते अेकवार अेकने

कन्यादान करवानी कल्पना करीने हुवे आप पील वरने भने आपवा धरुओ छे ते योग्य नथी कहुं छे के -

“ राब ओक वार न आशा आपे छे. साधु ओकवार न उपदेश आपे छे अने ओ प्रभाषे कन्यादान पशु ओक न वार देवाय छे. आ त्रुओ ओक न वार थाय छे. ”

[सं] एतत् श्रुत्वा श्रेष्ठयूचे स तु भ्रमर इव एकत्र नावतिष्ठतेऽतः कथं प्राप्यते पुनस्त्वप्रायास्यति न वा आयातोऽपि कथं ज्ञायते, किं तस्याभिज्ञानं ? तदा श्रीमत्या उक्तं हे तात ! मया तद्दिने गर्जितभीतया तच्चरणे विलग्नमयाभिज्ञानं इष्टमस्ति तस्मादतः परं तथा कुरु यथा प्रतिदिनं आयातश्च सर्वानपि साधून् पश्यामि । श्रेष्ठयुवाच, इह पत्तने केऽपि महर्षयः समायान्ति तेभ्यस्त्वं प्रत्यहं स्वयं भिक्षां देहि येन सर्वेषां दर्शनं स्यात् । ततः सापि प्रत्यहं तथैव चक्रे । तच्छंखणं दिदृक्षणमाणा च मुनिनां चरणानवन्दत ।

[हिन्दी] यह सुनकर सेठने कहा, साधु तो भ्रमर की तरह एक स्थान पर ठहरता नहीं है, सो वह मुनि वापसि यहां आवे या न आवे इसका पता कैसे चले ? उसकी पहिचान भी क्या है ? तब श्रीमती ने कहा हे पिताजी ! उस दिन गर्जन के साथ जब बिजली चमकी तब उस मुनि के चरणों में लग्न और डरी हुई मैंने बिजली के प्रकाश में कुछ पहिचान के चिन्ह देखे हैं । अतः से ऐसा करो कि मैं प्रतिदिन आने जाने वाले साधुओं का दर्शन करूं । सेठ ने कहा “ इस शहर में जो कोई भी महर्षि आवे उनको प्रतिदिन भिक्षा दो जिससे सब के दर्शन हो । अब श्रीमतीने प्रतिदिन सेठ के कहने के अनुसार साधुओं को वहेराना शुरू किया । वह प्रत्येक साधु में उन लक्षणों को देखने की इच्छा से चरण वन्दन करती थी ।

[शु०] आ सांभजीने शैठे कहुं : “ साधुओ तो भ्रमरनी जेम ओक ठेकाषे रहैना नथी तेथी ते मुनि हुवे अही आवे के न पशु आवे. तेना पत्तो केवी रीते दागे ? तेनी ओणभाषु पशु शु ? ” तयारे श्रीमतीअे कहुं के ‘ पिताछ ! ते दिवसे गर्जनानी साथे नयारे वीजणीना यभत्कार थयो अने हुं उरनी भारी मुनिना, चरणुओने वणगी पडी तयारे वीजणीना प्रकाशमां में तेभने ओणभी शकय तेवां चिन्डो जेयां छे.

तेथी हुवे अचुं करो के रोज जे जे साधुआ आवे तेनां हुं दर्शन करुं.”
शेठे कहुं : “आ शहरमां जे कोर्ष पणु भइषिं आवे तेने रोज तुं भिक्षा
आप, जेथी तेनां दर्शन थाय.”

हुवे श्रीमतीअे शेठना कहेवाथी रोज साधुआने वडोराववानुं शरुं
क्युं. ते प्रत्येक साधुने तेनां थरणोमां ते थिन्हो जेवानी अंछाथी वंदन
करती हती.

[सं०] अण द्वादशवर्षे स महामुनिर्दिग्भूदः सन् तत्रागतस्तच्छ्रणदर्शनात्तपोप-
लक्षितश्च तदा श्रीमती तमृषिमुवाच । तत्र देवकुले तदा यो मया वृतः स मम वरस्त्व-
मेवासि मद्भग्यैरेवाधुनागतोऽसि । अथ भां मुग्धां त्यक्त्वा क्व यास्यसि । यदा त्वं
दृष्टनष्टोभूत् तद्विनादारम्य मम हा दुःखेन कालोऽगमत् तत्मात्प्रसादे विधाय मामंशी-
कुरु । एवं स्थितेऽपि मामवमन्यसे तर्हि अग्निप्रवेशं कृत्वा तुभ्यं स्त्रीहत्यापातकं दास्ये ।

[हिन्दी] इस तरह साधुओं की सेवा करते हुए श्रीमती को १२ वर्ष लग
गये। इसी अवसर में आर्द्रककुमार मुनि विहार करते मार्ग भूल जाने से अथवा भाग्य-
योग से वसन्तपुर नगर में आये। भूख और प्यास से पीड़ित होने से नगर में गोचरी को
गये। “कर्म भोग कहीं छिपते नहीं हैं” अतः श्रीमती के भाग्योदय से वे मुनि
श्रीमती के घर ही गोचरी हेतु गये। श्रीमतीने आदर सत्कार से उनके चरण पकड़
कर कहा, ‘हे महाराज ! आप कहाँ जा रहा हैं ? बहुत दिनों से मैं भी आपकी
राह देख रही हुं। आज आपको देखकर प्रसन्नता हुई है। अब मैं आप को जाने
न दूंगी। उस दिन देव मन्दिर में देव वाणी के समक्ष आपका-मेरा वरण हुआ
था। तब आप पांव लुढ़ा कर चले गये थे। अब मेरे भाग्य से ही पुनः आपके
दर्शन हुए हैं। इस लिए मुझ मुग्धा को छोड़ कर आप न जायें। और मेरे साथ
विवाह कर मुझे स्वीकार करें। अगर आप ऐसा नहीं करेंगे तो मैं अग्नि में जल
कर मर जाऊंगी और आपको स्त्री हत्या का पातक लगेगा।

[गु०] आ प्रभाणु साधुआनी सेवा करतां करतां पार वर्ष वडी
गया. आ समये आर्द्रककुमार मुनि विहार करता करता मार्ग लुली जवाथी
अथवा तो भाग्ययोगथी वसन्तपुर नगरमां आवी गया. लूण अने
तरसथी व्याकुण थयेवा ते शहरमां गोचरी भाटे गया. “कर्मभोग छानां

रहेतां नथी. " माटे श्रीमतीना बाय्येदयथी ते मुनि तेना धरे न गोचरी माटे गया. श्रीमतीये आदर-सत्कारथी तेमने वडोरावुं. छेवटे पाछा इरती वपते मुनिने ओणपी पणु लीवा. तेथी श्रीमतीये तेमनां वरणु पडडीने कळु: 'हे मडाराण! आप कयां नय्यो छे? धरुा दिवसेथी हुं तमारी वाट न्नेछ रली छुं. आज आपने न्नेछने प्रसन्नता थछ. हुवे हुं आपने नवा नली छठ. ते दिवसे देवमंदिरमां देववाणुीनी साक्षीये माइं-तमाइं वरणु थयुं छतुं. ते दिवसे तमे पग छेडावीने आल्या गया छता. हुवे मारा सहभाज्ये न इरीवार आपना दर्शन थयां छे. माटे हुवे मने मुग्धाने छडीने आप आल्या न नय्यो. मारी साथे विवाड करीने मारो स्वीकार करो, जे आप येम नलीं करो तो हुं अग्निमां पडीने अणी मरीश अने आपने स्त्रीहृत्यानुं पाप लागरी. "

[सं०] तदान्यैरपि तत्पित्रादिभिर्महाजनैर्विवाहाय अभ्यर्थितः स साधुर्व्रतारंभनिषेधकं तद्देवीवचनं स्मरन् । ततस्तद्भोग्यकर्मोदयाद्यणमोक्षमिव कर्तुं तां श्रीमतीं पर्यणेषीत् । अथ श्रीमत्या सह चिरं भोगान् भुञ्जानस्य तस्य क्रमेण पुत्रः सज्जातः । स च क्रमेण वर्धमानो राजशुक इव वचतुमूलसज्जिह्वोऽभवत् । तत्पुत्रे संजाते सति स आर्द्रकुमारो हर्षितः सन् श्रीमतीं प्रोवाच अतः परं ते पुत्रः सहायोऽस्तु अहं प्रव्रजामि । तदा बुद्धिनिधिः श्रीमती सुतं प्रत्यवसरं ज्ञापयि तूलपूणिकासहितं तर्कुमादायोपाविशत् ।

[हिन्दी] तब दूसरे महाजन व (श्रीमती के) पिता आदि ने मुनि से विवाह के लिये प्रार्थना की । आर्द्रकुमार को देवी वचन स्मरण हो आये जो प्रव्रज्या लेने के पूर्व उसने निषेध रूपसे कहे थे । उन्होंने विचारा कि भोग्यकर्म अवशिष्ट हैं, उन्हें भोगे बिना ऋणमोक्ष नहीं होगा । अतः उन्होंने विवाह की स्वीकृति दे दी । साधु वेश और ओषा मुहपत्ती आदि बांधकर खूटी पर (टांग दिये) रख दिये । "

अब श्रीमती से विवाह कर वे विषय सुखका आनन्द लेने लगे । इस तरह समय बीत गया कालक्रम से श्रीमती के एक पुत्र हुआ । वह पुत्र भी क्रम से बढ़ता हुआ राजशुक की तरह मधुर वाणी से शार्तालाप करने लगा । जब पुत्र ५ वर्ष का हो गया, तब आर्द्रकुमार ने विचार किया कि श्रीमती को पुत्र का आधार हो गया है, और मैंने भोगावली कर्म भी भोग लिये हैं, अतः अब दीक्षा लेना ठीक है । ऐसा विचार कर श्रीमती से कहा कि अब मैं दीक्षा लूंगा, तुम्हारे भी पुत्र का

आधार हो गया है। तब बुद्धि के निवान वह श्रीमती अपने पुत्र को यह बात बताने के लिये रुई की पुनिवा ले कर चरखा कातने बैठी।

(गु०) पछी पील सलज्जने। अने श्रीमतीना पिता वगेरेके मुनिने विवाह करी लेवानी प्रार्थना करी. आर्द्रकुमारने दीक्षा लेती वण्ठे देवीके निषेधना उपमां के वथने कहां हतां ते याद आया. तेमणे विचारुं के भोगकर्म के पाकी छे, ते भोगया विना ऋणभोक्ष नहीं थाय, माटे तेमणे विवाहनी संभति आपी अने साधुवेश, आधी अने मुहपत्ति वगेरे पांधीने पीली पर टांगी दीधां.

हुये श्रीमती साथे विवाह करीने ते मुष्ठा भोगववा लाग्या. आ प्रमाणे बल्लो वण्ठ वीती गयो. जते दिवसे श्रीमतीने अेक पुत्र थयो. ते छेकरे पणु मोटो यतां मधुर वाणुथी वार्तावाप करवा लाग्या. ज्यारे पुत्र पांच वर्षना थयो त्यारे आर्द्रकुमारे विचार कर्यो के हुये श्रीमतीने पुत्रना आधार थछ गयो छे, अने मे पणु भोगववानां कर्मो भोगवी दीधां छे, माटे हुये दीक्षा लेवी जेधके अेवो विचार करीने श्रीमतीने तेणे कहुं के " हुये हुं दीक्षा लकश. तमारे पणु पुत्रना आधार थछ गयो छे. "

त्यारे बुद्धिशाली अेवी श्रीमती पोताना पुत्रने आ हुकीकत ठसववाने माटे इनी पूणीअे लडने कांतवा अेसी गछ

[सं०] तदा तूलकर्त्तनक्रियां कुर्वाणां तां विलोक्य स बालकः पप्रच्छ, हे अम्ब ! एतत्पामरलोकोचितं कर्म किं प्रारब्धं ? सा प्रोचे हे पुत्र ! तव पिता त्वां मां च त्यक्त्वा प्रव्रज्यार्थं गन्तुमना वर्तते। गते चास्मिन् पतिहीनाया मे तर्कुरेव शरणं तदा बालको वास्यान्मन्मनाश्ररैस्वाच अहं बहुधा धारयिष्यामि कथं मे पिता यास्यति ? आर्द्रकुमारोऽपि तन्मधुरं बालवचोबुद्धं श्रुत्वा सुतस्नेहादेवमुवाच, हे पुत्र ! यावद्विस्तन्तुभिर्मै पादौ नद्धौ तावन्ति वर्षाणि पुनर्गृहेस्थास्यामि। गणयित्वा बंधनानि आच्छोदय।

[हिन्दी] तब माँ को चरखा कांतती देखकर बालकने पूछा : " हे माता यह पामर जातियो के योग्य कर्म तूने क्यों शुरू किया है ? " वह बोली " हे पुत्र ! तुम्हारे पिता मुझे छोड़ कर दीक्षा लेने का विचार करते हैं । इनके चले जाने पर पति हीन मेरे लिए चरखा कांतना ही अवशेष रहेंगा । तब पुत्रने कहा माँ मुझे कोकडी दे सो मैं अपने पिताजी को ऐसा बांध दूँ कि वे कहीं भी न जावेंगे । " आर्द्रकुमारने भी ऐसे मधुर वचनो को सुना और उन्हे मोह उत्पन्न हो गया । वह विचारने लगा " अहो ! मोह की गति कैसी अद्भुत है जिसका कहीं पार नहीं है । " उसने बालक से कहा, " हे पुत्र ! जितने तन्तुओं से तुम मेरे पैर बांधोगे उतने वर्ष मैं फिर घर मे रहूँगा अब गिन कर आँटे देना । "

(शु०) भाने रेंटियो कांतती जेधने पाणके पूछ्युः ' माता ! आ लुलकी जलित्थोने योग्य काम करवानुं तें केम शरु क्युं छे ? ' त्यारे ते प्वालीः " हे पुत्र ! तारा पिता तने अने मने छेडीने दीक्षा लेवानो विचार करे छे. तेमना आख्या गया पछी पति विनानी अेवी भारे माटे रेंटियो कांतवानुं ज पाकी रहेशे. " त्यारे पुत्रे क्युः " मा, तुं मने कांतका सुतरनी कोकडी दे, जेथी हुं अेनाथी भारा पिताजने अेवां पांधी लठ के ते कथांय जर्ध न शके. " आर्द्रकुमारने पण पाणकनां आवां पयनो सांभणीने मोह उत्पन्न थर्ध गयो. ते विचारया लाय्योः " अहो मोहनी गति अेवी अद्भुत छे के जेना पार नथी. " तेण्णे पाणकने क्युः " हे पुत्र ! जेठला तारथी तुं भारा पण पांधीश अेटला वर्ष हुं घर जलार नहीं जठि; माटे गण्णीने आंटा देजे. "

[सं०] ततो गणिता द्वादश वंधा अभवन् । तेन स द्वादश वर्षाणि पुनर्गृहे स्थास्मे इत्युक्त्वा अवाहयत् । जथ प्रतिज्ञापूर्णाभवनानन्तरं स वैराग्यपूर्णमानसो रात्रेः पश्चिमे प्रहरे इत्यचिन्तयत् भया प्राग्भवे मनसेव व्रतं भग्नं तेनाहमनार्यत्वं प्राप्नोस्मि अत्र भवे पुनर्व्रतं गृहीत्वा मुक्तमतः का गतिर्मे भविष्यति हृदानीमपि व्रतज्यां गृहीत्वा तपसा आत्मानं शोधयामि इति विचिन्त्य प्रातःकाले श्रीमतीं पत्नीं स्वसुतं च संभाष्य तदनुमतिं च लात्वा साधुलिङ्गं समादाय निर्ममत्स्यो गृहान्निर्ययी ।

[हिन्दी] अब बालक ने आर्द्रकुमार के पैरों में आंटे देने शुरू किये तब आंटे देते देते दो आंटे छूट गये। आर्द्रकुमार ने आंटे गिने तो बारह निकले इससे बारह वर्ष तक घर में फिर रहूंगा ऐसा कहकर उस बालक को विदा किया [किसी पुस्तक में लिखा है कि वह बालक छत की [कोकड़ी] गुंडी लेकर वहाँ गया जहाँ आर्द्रकुमार सोये हुए थे। उसने वहाँ जा कर आर्द्रकुमार के दोनों पाँव शामिल कर बांधे और वह बोला, माँ! किसी तरह की चिन्ता मत करना। मैंने इनकी इतना मजबूत बांधा है कि अब ये कहीं भी नहीं जावेंगे। यह वचन सुनकर आर्द्रकुमार ने विचारा कि जितने आंटे वह बालक बांधता जाय बीच में न टूटें उतने वर्ष मैं फिर घर में रहूंगा। ऐसा विचार किया ही था कि तार टूट गया। तब वह लड़का दौड़कर माता के पास गया और आर्द्रकुमार ने तार गिने तो वे बारह थे। अतः बारह वर्ष तक घर में रहकर गृहस्थ धर्म चलाया।]

अब प्रतिज्ञा पूर्ण हुई यह जानकर एक बार रात्री के अंतिम प्रहर में निद्रा भंग होने से आर्द्रकुमार के मन में विचार उठा कि देखों। मैंने चारित्ररूपी नाव को संसाररूपी समुद्र में छोड़ दिया, अतः मैंने पूर्व भव में अपने चारित्र व्रत में मनसा दौष लगाया जिसके फल स्वरूप मेरा जन्म अनार्यदेश में हुआ। और अब भी इस भव में व्रत लेकर तपस्या भंग की इससे कौन जाने मेरी कैसी गति होगी।

अब मैं पुनः दीक्षा अंगीकार करके निरतिचार चारित्र का पालन करूंगा तभी मेरी आत्मा का कल्याण होगा। अगर इस बात फिर चूक गया तो मेरा पता लगाना भी मुश्किल होगा। ऐसा विचार कर प्रातःकाल होते ही तत्काल स्व स्त्री श्रीमती की तथा पुत्र की आज्ञा लेकर साधुपणा का महाव्रत अंगीकार कर के विहार किया।

[शु०] एवं पाण्डके आर्द्रकुमारना पण्डरिता सुतरना आंटा देवा शः कथा. आर्द्रकुमारे आंटा गण्था तो ते पार नीकण्या. आथी 'पार वर्ष' सुधी धरमां उल्ल रहीश' अम कहीने पाण्डकने विहाय कथी. (कोर्ध कोर्ध पुस्तकमां लप्पुं छे के ते पाण्डक सुतरनी कोकडी लछने तेना पिता सूता उता त्यां गया. तेण्णे त्यां बर्धने आर्द्रकुमारना अन्ने पण भेगा करीने पांध्या अन्ने व्याख्या: 'मा, एवं कोर्ध जतनी थिंता करीश नही. में अमना

पग जेवा भगव्यूत पांथ्या छे के तेजो हुवे कयांय पणु जठ शकशे नही. ' आ वचनो सांभणीने आर्द्रकुमारें विचार्युं के, 'आ पाणक दे छे ते आंठा वचने न तुटे त्यां सुधी हुं धरमां रडीश. जेवो विचार ज्यां कर्यो त्यां ज तार तुटी गयो. त्यारे ते छेकशे दोडीने तेनी माता पासे जतो रह्यो. आर्द्रकुमारें तार गल्या तो पार छता. आधी पार वर्ष सुधी धरमां रडीने तेणे गुहस्थधर्म यक्षाव्यो.

हुवे प्रतिज्ञा पूरी थर्ध जेवुं जलुनी जेकवार रातना छेला प्रह-
रमां निद्राभंग यतां आर्द्रकुमारना मनमां विचार छेकयो: " में भारी
चारित्र्यपी नावने संसारपी समुद्रमां छेडी दीधी, तेथी भारा जेवो
भूर्ध कौणु हुशे ? हाय ! हाय ! में पूर्वभवमां भारा चारित्र्यप्रतमां
मनथी दोष कर्यो जेना इण इधे भारो जन्म अनार्यदेशमां यथो. वणी
आ भवमां पणु प्रत लछने तपस्यानो भंग कर्यो: हुवे कौणु जलु भारी
केवीथे गति थरी ! हुवे हुं इरीवार दीक्षा अहणु करीने निरतिचार
चारित्र्यनुं पावन करीश: तो ज भारा आत्मानुं कल्याणु थरी. जे आ
वभते पणु यूकी जठश तो भारो पत्तो लागयो पणु कठणु थध पडशे. "

आवो विचार करीने प्रातःकाण यतां तस्त ज पोतानी स्त्री श्रीमती
तथा पुत्रनी रज लछने तथा आधी, मुहपत्ति वगेरें सामान लछ साधु-
पणुनुं महाप्रत अंगीकार करीने विहार करी गया.

[सं] अथ राजगृहं व्रजन् अन्तराले चौर्यवृत्तिं कुर्वाणां स्व सामन्त-पञ्चशतीं
ददर्श । तैरप्युपलक्ष्य भक्त्या वन्दितः, स साधुस्तानवादीन् पुष्पाभिर्महापापहेतुरेषाजीविका
किमाहताः ? तैरुतं हे प्रभो ! अस्मान वञ्चयित्वा यदा त्वं पलायिष्ठास्तदादितो लज्जया
भूपतेर्मुखं न दर्शयामः । त्वैवान्वेषणे लग्नाः पृथ्वीं भ्रमन्तचौर्यवृत्त्यैव जीवामः । मुनिह-
वाच अयुक्ता वृत्तिर्भवद्मिराहता, केनापि पुण्ययोगेनेदं मानुष्यकं प्राप्य स्वर्गापवर्गप्रदो
धर्म अत्र सेव्यो, हिंसासत्यचौर्याब्रह्मपरीग्रहपरित्यागः कर्तव्यः ॥

[हिन्दी] इस तरह ग्राम से ग्राम विहार करते २ वह आर्द्रकुमार राजगृही में
पहुंचे । इसी बीच रास्ते में उन्हें चौर्यवृत्ति करके जीवन यापन करते हुए अपने
पांचसौ सामन्त दिखाई दिये । सामन्तों ने भी आर्द्रकुमार को पहचानकर भक्ति से

वन्दना की। तब साधु रूप आर्द्रकुमारने उनसे कहा, तुम लोग महापाप कर आजीविका क्यों स्वीकारा? उसने कहा "हे प्रभो! आप तो हमें ठगकर भग गये तब से लेकर आज तक हम लज्जा के कारण राजाको मुख न दिखा सकें और आपको पृथ्वीतल पर हंडते हुए इस चौर्यवृत्ति से जीविका चला रहे हैं।" यह सुन मुनीने कहा, हे देवप्रियो! उदर पूर्ति के निमित्त ऐसे कृत्य करने तुम्हारे लिए शोभाजनक नहीं हैं। किसी अपूर्व पुण्य के योग से मनुष्य जन्म मिलता है। वह जन्म प्राप्त कर मानव को स्वर्ग एवं मोक्ष के देने वाले धर्म की सेवना करना चाहिये। अतः हिंसा, असत्य, चोरी, ब्रह्म-परीग्रहका परित्याग करना चाहिये।

(२७०) आ प्रभाषे गामोगाम विहार करता करता ते आर्द्रकुमार राजगृही पडोंच्या. रस्तामां तेने चोरी करीने छवन वीतावता पोताना पांयसे सामंतो मठ्या. सामंतोअे आर्द्रकुमारने आणप्या अने तेमने भक्तिभावधी प्रणाम कर्था. त्यारे साधु रूप आर्द्रकुमारने तेमने कहुं: तमे महापापना हेतुभूत आशुविका केम स्वीकारी? आर्द्रकुमारने तेमणे कहुं: 'प्रभो! आप तो अमने छेतरने आल्या गया. त्यारधी आण सुधी शरमना भार्या अमे राजने मोडुं पतावी शक्या नथी. आपने आणी दुनियांमां शोधता शोधता चोरी करीने आशुविका चलावीअे छीअे."

आ सांभणीने मुनिअे कहुं: 'हे देवप्रियो! पेट भरवा भाटे आवां कृत्ये करवा अे तमने शोभारूप नथी. कोम अपूर्व पुण्यना योगधी आपणुने आ मनुष्यजन्म मठ्ये छे. आ जन्म प्राप्त करीने भाषुसे स्वर्ग अने मोक्ष आपवावाणा धर्मनुं सेवन करतुं जेछेअे. अने हिंसा, असत्य, चोरी अग्रह अने परिग्रहना त्याग करवो जेछेअे.'

[सं०] हे भद्रा! यूयं स्वामिभक्तः स्थ । प्राग्बदहं घुष्माकं स्वामी, अतो ममैव मार्गं प्रपद्यध्वं । तवस्ते प्रोचुः पूर्वं त्वमस्माकं स्वाम्येवाभूः सांप्रतं तु गुरुरप्यसि यतस्त्वयास्मभ्यं धर्मो ज्ञापितोऽथास्मान् दीक्षयानुगृहाण । तत आर्द्रकुमारस्तान् प्रव्रज्य तैः सहितः श्री महावीरं वन्दितुं राजगृहाभिमुखं ययौ । मार्गे गच्छतस्तस्य गोशालोऽभिमुखं मिलितो विवादं कर्तुं प्रवृत्तः । भूचराः खेचराश्चापि सहस्रशः आघाताः कोतु-कार्थिनस्तस्थुः ।

[हिन्दी] है भद्रा ! तुम स्वामी भक्त हो । पहिले की तरह मैं तुम्हारा स्वामी हूँ, अतः मेरे ही मार्ग पर चलो, " दीक्षा अंगीकार करो इससे तुम्हारा यह भव और परभव दोनों सुधर जायेंगे " । तब वे बोले " पहिले आप ही हमारे स्वामी थे और अब गुरु हैं अतः आपने हमें धर्म का प्रतिबोध दिया है कृपा करके हमें दीक्षित किये " । तब आर्द्रकुमारने उन सबको दीक्षा दी । फिर उन सबके साथ श्री महावीर स्वामी की वन्दना करने के लिए राजगृही की तरफ चले । रास्ते में उन्हें मंखली पुत्र गोशाल मिला । वह विवाद करने को तत्पर हुआ, " गोशाल ने सोचा कि अगर मैं विवाद करके इनको मेरे मत में ले लूँ तो मेरे धर्म की वृद्धि होगी । " विवाद प्रवृत्त हुआ तब वहाँ आसपास के लोग, भूचर-खेचर आदि हजारों मानव कौतुक देखने को इकट्ठे हो गये ।

(गु०) "हे भद्र लोको ! तमे स्वामीभक्त छे. पड़ेलांनी जेम हुं तमारो स्वामी छुं. माटे तमे मारा न अतावेला मार्ग पर थासो. दीक्षा अंगीकार करो. अनाथी तमारो आ भव तथा परभव अन्ने सुधरी नरी. " त्यारे तेज्या आल्याः " पड़ेलां आप न अमारा स्वामी उता, उवे अमारा गुरु छे, तमे अमने धर्मो उपदेश आप्ये छे तो उवे कृपा करीने अमने दीक्षा आपो " त्यारे आर्द्रकुमारे ते सौने दीक्षा आपी. पछी ते सौनी साथे महावीरस्वामीने वंदना करवा माटे राजगृही तरफ आल्या. तेमने मंखलीपुत्र गोशालक मळ्ये. ते विवाद करवा तैयार थयो. गोशाले विचारुं के जे हुं विवाद करी तेने मारा मतमां लछ लछ तो मारा धर्मनी वृद्धि थाय. आ विवाद थवानी तैयारी थछ त्यारे त्यां आसपासना लोको अने भूचर-खेचर प्राणुंआ वगेरे सौ कोछ जेवा माटे अकडां थछ गयां.

[सं०] गोशालोऽवदत् ' भवतां तपःकष्टं वृथैव, यतः शुभाशुभफलनां कारणं नियतिरेवास्ति ! ततो मुनिरवादीव पौरुषमपि कारणं मन्यस्व । यदि सर्वत्र नियतिमेव कारणं मन्यसे तर्हि अभीष्टसिद्धयर्थं सर्वाः क्रियाः वृथाः प्रसज्येरन् । तथाहि हे नियतिवादन् ! सर्वदा स्वस्थाने एव किं न तिष्ठसि ? भोजनावसरे च भोजनाद्यर्थं च कथमुद्यमं करोषि ? एवं स्वार्थसिद्धये नियतिवत्पौरुषमपि साध्यस्ति । अर्थसिद्धौ नियतेरपि पौरुषमाधिक्यं भजते ।

[हिन्दी] तब गोशाले ने कहा, हे आर्द्रकुमार ! [" महावीर स्वामी में क्या रक्खा है, पहिले तो वे साधु धर्म को ठीक से पालते थे अब तो ढोंगी हो गये हैं पहिले वे अकेले रहते थे, किसी से बोलते नहीं थे, अब तो परिषद (सभाएँ) इकट्ठी करते हैं । " यह सुनकर मुनिने कहा, " अरे गोशाल ! ऐसा मत कहो, पहिले तो भगवान् छद्मस्थ थें और अब केवली हो गये हैं, तीर्थंकर नामकर्म उदय हुए हैं, अतः सभा में बैठकर देशना देते हैं, और महान् उपकार करते हैं, भाव से तो वे अब भी अकेले ही हैं । तू बड़े पुरूषोंके लिए अवर्णवाद मत बोल । "] तब गोशाल ने कहा कि अरे ! आर्द्रकुमार ! तुम वृथा ही तपस्या का कष्ट उठाते हो क्योंकि शुभाभ फल का देने वाली नियति (होनहार) ही है । अतः होनहार को मान कर चलो तो सारी क्रियाओं के कष्ट से मुक्त हो जाओगे । उद्यम का क्या काम है । तब मुनि ने कहा कि हे नियतिवादी ! अगर तुम उद्यम को नहीं मानकर सर्वत्र नियति को ही मानते हो तो अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए सारी क्रियाएँ फालतू ही करते हो " तुम गाँव में गोचरी को क्यों जाते हो " सर्वदा एक ही स्थान पर क्यों नहीं ठहरते ? भोजन के समय मुख में रोटी पहुँचाने का उद्यम क्यों करते हो, रोटी का कौर मुख से क्यों चबाते हो, अपने आप बिना उ म के पेट भर जायगा; फिर तुमने वह मस्तक में मुँहन क्यों कराया है क्योंकि होनहार तो होगीही ।

[गु०] गोशाले कहुं: हे आर्द्रकुमार ! [महावीर स्वामीमां हवे शुं छे ? पहिलां तो तेज्या साधु धर्मने परापर पाणता हता अने हवे तो ढोंगी थर गया छे. पहिलां तेज्या अकला रहता हता, कोठनी साथे गालता नहोता अने हवे तो सभाज्या भरे छे. आ साभाजीने मुनिज्ये कहुं: 'अरे गोशाल, अयुं न कहे. पहिलां तो भगवान् छद्मस्थ हता अने हवे तो केवणी थर गया छे. तीर्थंकर नामकर्म उदय थयुं छे माटे तेज्या सभामां ज्येसीने उपदेश आपे छे, अने लोको उपर महान् उपकार करे छे. भावथी तो हल पशु तेज्या अकला ब छे. तुं महा-पुरूषोने माटे अवर्णवाद न ग्याल']

त्यारे गोशाले कहुं: 'आर्द्रकुमार, तमे नकामा तपस्यातुं कष्ट उहाये छे; मरखुं के शुभाशुभ कृणने हेवाणी नियति ब छे. माटे नियतिने

मान्नीने ज आलो तो जधां दुःखेथी मुक्त थछ जशो. उद्यम करवानुं शुं प्रयोजन छे ?'

त्यारे मुनिअे कछुं के डे नियतिवादी ! तमे उद्यमने न मानतां जधे भाग्यने ज मानो छे तो पछी तमारी छेडेली वस्तुअे मेणववा भाटे प्रयत्नो नकामा ज करे छे. तमे गाममां गोथरी भाटे शा भाटे जअे छे ? दुःमेशां अेक ज स्थान पर केम अेका रहैता नथी ! भोजन करती वधते मोढामां रोठली पछोआउवानो प्रयत्न शा भाटे करे छे ? रोठलीना कोणियो मोढामां शा भाटे आवो छे ? पोतानी मेणे ज प्रयत्न कथां सिवाय पेट भरार्थ जशे. वणी तमे आ तमाइं माथुं शा भाटे मुंजव्युं छे ? थवानुं छे ते तो थशे ज.

[हिन्दी] अतः स्वार्थसिद्धि के लिए नियति की अपेक्षा उद्यम करना ठीक है । बिना महेनत के कोई काम नहीं बनता, जिस काम को हम कर ले उसका फल ही नियति है । वह कार्य भी उद्योग से उत्पन्न होता है । जैसा २ शुभाशुभ कर्म बन्धन होता है उसी के अनुसार पाप और पुण्य का उदय होता है । ये कर्म ही आश्रव तथा संवर के कारण बनकर बन्धते हैं, अगर ऐसा नहीं तो ' सो जाना, बैठना, चलना, हंसना ' इत्यादि क्रियाओं का नाश हो जावेगा । अतः नियति से भी उद्यम बलवान हैं ऐसा मानना चाहिये । "

[गु०] भाटे, स्वार्थसिद्धिने भाटे भाग्यनी उपर आधार राभवा करतां उद्यम करवो ज ठीक छे. बिना प्रयत्न कोछ काम थतुं नथी. आपणुं जे काम करीअे तेनुं इण, अे ज भाग्य छे. ते काम पणुं उद्योगथी ज उत्पन्न थाय छे. जेम जेम शुभाशुभ कर्मनुं अंधन थतुं जय छे तेम तेम पाप अने पुण्यनो उदय थाय छे. आ कर्मां ज आश्रव अने संवरना कारण थछने अंधन आंधे छे. जे अेम न होय तो सूनुं, अिसनुं, आसनुं, दुसनुं वगेरे क्रियाअेनो नाश थछ जय. भाटे भाग्य करतां पणुं उद्यम भणवान छे, अेम माननुं जछअे.

[सं०] तथाहि आकाशात्पानीयं पतति परं भूखननादपि तद्भवेत् । यतो नियति बलीयसी परं नियतेरपि पौरुषं बलीयः एवं स मुनिर्गोक्षालं निरुचरीचक्रे तदा जय जय

शब्दं कुर्वद्भिलोकैः एवं खेचराद्यैश्च तस्य महामुनेर्वह्वी प्रशंसा कृता । तत आर्द्र-
ऋषिर्हस्ति-तापसाश्रमसमीपे आययी तत्रस्थास्तापसा एकं महान्तं हस्तिनं इत्वा तन्मांस-
भुञ्जाना व न् दिवसान् व्यतीयान्त । ते चेवमूचुः एकस्यैव हस्तिनो हननं वरम्, यत
एकजीवघातेन भूयान् कालोऽतिगम्यते । मृगतितिरमत्स्याद्यैर्घान्यैश्च बहुरपि न तथा
'तस्माच्च भक्षणं न युक्तं बहुपापसद्भावात्'

[हिन्दी] देखो ! आकाश से भी जल गिरता है परन्तु पृथ्वी खोदने के उद्यम से भी जल प्राप्त होता है, यह ठीक है कि निषति बलवान है फिर भी नियति से पीरुष बलवान है, इस तरह की अनेकानेक युक्तियों से आर्द्रऋषि ने गोशाल को निरुत्तर कर दिया तब आकाश से जय जयकार हुआ और सुनायी दिया कि " आर्द्रकुमार मुनि जीते और गोशाल हारा " तब वहां उपस्थित सभी लोगोंने मुनि की खूब प्रशंसा की । इस तरह गोशाले को हरा कर मुनि हस्ति तापस के आश्रम (मठ) के पास आये । ये हस्ती तापस इस मतको प्ररूपणा कर रहे थे कि धान आदि में हजारों कणों में हजारों जीव होते हैं उन्हें भक्षण करने से उसमें अनेकों जीवों की हत्या का पाप लगता है । इससे तो यह अच्छा है कि एक हाथी को मारकर खा ले तो एक जीव हत्याका ही पाप लगेगा । इस तरह से अहिंसा की उनकी प्ररूपणा थी । वे कहते थे, कि मृग, तीतर, मत्स्य आदि मारना व घान्य आदिका भक्षण करना ठीक नहीं है क्योंकि इसमें बहुत पाप लगता है ।

[शु०] " बुझे, आकाशमांधी पाणी पडे છે, પરંતુ પૃથ્વી ખોદવાના ઉદ્યમથી પણ પાણી મળે છે. એ ઠીક છે કે ભાગ્ય બળવાન છે, છતાં પણ ભાગ્ય કરતાં પીરુષ બળવાન છે. " આ પ્રમાણેની અનેક યુક્તિ પ્રયુક્તિવાળી દલીલોથી આર્દ્રઋષિએ ગોશાલને નિરુત્તર કરી દીધા, ત્યારે આકાશમાંથી જય જયકાર થયો અને સંભળાયું કે "આર્દ્રકુમાર મુનિ જીત્યા અને ગોશાલ હાર્યા. " ત્યારે ત્યાં હાજર રહેલ સ્ત્રીવર્ગે મુનિની ઘણી પ્રશંસા કરી. આ પ્રમાણે ગોશાલને હરાવીને મુનિ હસ્તિ તાપસના આશ્રમે આવ્યા. આ હસ્તિ તાપસ એવા મતનો પ્રચાર કરતા કે અનાજના હબરો કણોમાં હબરો જવો હોય છે. તેનું ભક્ષણ કરવાથી હબરો

छोनी हत्या करवानुं पाप लागे छे. अना करनां तो अक छधीने भारीने पाप लक्ष्मि तो अक न छधीने हत्या करवानुं पाप लागे. आवी रीतनी अहिंसानो ते प्रचार करतो हतो. तेयो कहेता के उरथु, तेतर, भाछवां वजेरे भारवां अने अनाजनुं भक्षणु करवुं अे अराअर नथी, कारणु के अेमां धणुं पाप लागे छे. ”

[सं०] तदा च ते मिथ्याधर्मनिष्ठास्तपस्विनो मारणार्थमेकं महामतङ्गजं बन्धुः । पत्रं शृङ्खलबद्धः स गज आसीत्तेनैव मार्गेण करुणानिधिः स महर्षिर्जगाम । तदा स हस्ती मुनिवञ्चनीयुतं बहुभिर्जनैर्वन्द्यमानं तं महर्षि दृष्ट्वा लघुकर्मत्वादित्यचिन्तयत् । अहमप्येतं मुनिं वन्देयं यदि बद्धो न भवेयम्, बद्धस्तु किं कुर्याम् ? एवं चिन्तयत-स्तस्य महर्षेर्दर्शनात्सऽप्यशृङ्खला न्यशीर्यत । अथ स हस्ती निर्मूलः सन् तं मुनिं वन्दितुमभ्यागात् तदा लोका एष मुनिर्हतो इत इति ब्रवाणाः पलायंचक्रिरे ।

[हिन्दी] इस तरह यह मुनी हाथी को मारने से 'हस्तीतापस' ऐसा विख्यात हुआ। एक बार मिथ्याधर्म निष्ठा में निमग्न उस 'हस्ती तापस' ने एक जवान हाथी भक्षण करने के लिए बांध कर रखा। इधर आर्द्रकुमार पांचसी मुनियों समेत उधर से जा रहे थे उस हाथी के लघु कर्म अवशिष्ट थे अतः उस हाथी ने विचार किया कि मैं अगर बन्धन में न होता ऐसे भक्ष्य मुनीका बन्दन अवश्य करता। अब बन्धन में पड़ा हुआ हूँ अतः क्या करूँ ? इस तरह वह चिन्तना कर रहा था की उसकी लोह शृंखला टूट गयी। अब हाथी शृंखला रहित हुआ, वह मुनीराज को नमस्कार करने के लिए आया। तब आसपास के लोग परस्पर यह कहते हुए भागने लगे कि यह हाथी आज मुनीराज को मारेंगा।

(गु०) आ प्रभाणु आ मुनि छधीने मारवानो उपदेश करता हता तथी " उरित तापस " ना नामथी प्रख्यात थया हता. अक वार मिथ्या धर्मनिष्ठां निमग्न थयेला ते हस्ति तापसे अक जुवान छधीने भारीने पावा भाटे पांधीने राभ्यो हतो. आ जानु आर्द्रकुमार पांचसी मुनियो साथे त्यांथी नर रथा हता. छधीना लघुकर्म भोगववां पाडी हतां तथी ते छधीअे विचार कर्यो के अे हुं पंधनमां न होत तो आवा अव्य मुनिने नर वंदन करत. पणु पंधनमां पडयो छुं अेटले

शुं थाय ? आवी रीते ते विचार करतो હતો त्यां तेनी दोढानी सांकणो
तूटी गछ. हाथी न्यारे मुक्त थयो अने मुनिराजने वंदन करवा भाटे
आव्यो, त्यारे आगुणागुना लोको अंदर अंदर अंभ कहेता कहेता
भागवा लाग्या के नदर आ हाथी मुनिराजने मारी नापशे.

[सं०] मुनिस्तथैव तस्थौ गजोपि नम्रीकृतकुम्भस्थलः सततं मुनिं नमति स्म,
पुनः शुंडादण्डं प्रसार्य मुनिपादौ स्पृष्ट्वा सुखं प्राप। ततः स मत्रः समुन्धाय
भक्त्या मुनिं पश्यन् अष्ट्याकुलः सन् अरण्यानीं प्रविवेश। तदात्यद्भुतं तत्प्रभावं दृष्ट्वा
वातिकोपं प्राप्तस्ते तापसा अपि आर्द्रकुमारसाधुना प्रत्यबोध्यन्त। ततस्तत्प्रेषिताश्रिते
श्री-वीरसमवसणं गत्वा दीक्षां जगृहः।

[हिन्दी] मुनि आर्द्रकुमार उसी समय कायोत्सर्ग ध्यान में खड़े ही रहें। हाथी
भी मुनियों के पास आकर अपना कुंभस्थल (मस्तक) नमाकर नमस्कार करके अपनी
सूंड को लम्बी कर मुनिराज को वांदकर प्रसन्न हुआ। फिर वह हाथी वहां से उठ-
कर प्रसन्न चित से जंगल में चला गया। इस अद्भुत चमत्कार को देखकर इष्या
कृपित वे तपस्वी मुनि के पास आकर वाद करने को तत्पर हुए और मुनि ने भी
उन्हे हेतु, युक्ति, प्रमाण आदि से प्रतिबोध दिया। तदनन्तर वे सब तपस्वी श्री
महावीर स्वामी के पास मुनि द्वारा भेजे गये। और वहां उन्होंने दीक्षा अंगीकार की।

(शु०) मुनि आर्द्रकुमार ते वभते कायोत्सर्ग ध्यानमां जिला न
रखा. हाथी पशु मुनिनी पासे आवीने पोतानुं मस्तक नमावी नमावीने
तथा पोतानी सूंड लांभी करीने मुनिराजनी वंदना करीने प्रसन्न थयो.
पछी ते हाथी त्यांथी उढीने प्रसन्नचित्तं नगलमां आव्यो गयो. आ
अद्भुत चमत्कार जेधने अष्ट्याथी कोपायमान थयेला ते तपस्वी मुनिनी
पासे आवीने वादविवाद करवा तत्पर थया; मुनिजे पशु तेने हेतु,
युक्ति, प्रमाण वगैरे द्वारा उपदेश कयो. त्यारपछी ते पधा तपस्वी-
आने मुनिजे महावीरस्वामी पासे भोक्त्या. त्यां सौजे दीक्षा अंगी-
कार करी.

[सं] अथ श्रेणिकराजाऽपि तथा गजमोक्षणं तापसप्रतिबोधं च श्रुत्वाभयकुमार-
युक्तस्तत्रागात् । मुनिर्मक्त्वा वंदमनं राजानं धर्मलाभाशिषं ददौ । अथ शुद्रभूतले आसीनं
मुनि राजा पप्रच्छ, हे भगवन् ! हस्तिमोक्षणामन्म महादाश्वर्यं समजनि । मुनिरुचे हे
राजन् ! हस्तिमोक्षणं न दुष्करं किन्तु आमतन्तुपाशमोक्षणं मां दुष्करं प्रतिमासते ।
राजा पृष्ठं स्वामिन् ! तत्कथं ? तदा मुनिः सकलामपि स्वां कथां कथयामास । तत
आर्द्रकुमारोऽभयं भाषितवान् त्वं मम निष्कारणोपकारी धर्मबांधवोऽमूः । हे मित्र !
त्वत्प्रेषिताईत्प्रतिमादर्शनादहं जातिस्मरणं प्राप्य जिनधर्मानुरक्तोऽमूवम् ।

[हिन्दी] अथ श्रेणिकराजा भी उसी तरह से हाथी का मोक्ष और तापसोका
प्रतिबोध मुनिकर अभयकुमार के साथ मुनि (आर्द्रकुमार) को वन्दन करने आये । उन्होने
मक्ति युक्त वित्त से मुनि को वन्दन किया । मुनि ने उनको धर्मलाभ की आशीष दी ।
फिर शुद्र भूतल पर बैठे मुनि को राजाने पूछा, " हे भगवन् ! हाथी के मोक्ष को
मुनिकर मुझे महान् आश्चर्य हुआ है" मुनि बोले, " हे राजा ! हाथी को छुड़ाने का
कार्य इतना कठिन नहीं है जितना कि कच्चे सूत के तारों को छुड़ाना कठिन है ।"
राजाने पूछा महाराज यह कैसे ? तब मुनि ने अपनी सारी कहानी कह सुनायी ।
फिर आर्द्रकुमार ने अभयकुमार से कहा, " आप मेरे बिनाकारण के उपकार करने
वाले धर्म भाई हो । हे मित्र ! तुम्हारे द्वारा भेजी गई जिन भगवान की प्रतिमा के
दर्शन से ही मुझे पूर्वभवों का बोध हुआ और मैं जिन धर्म में अनुरक्त हुआ ।"

(शु०) एवं श्रेणिक राज् पश्य ये न प्रमाणे हाथीना मोक्ष तथा
तापस्वीयानो उपदेश सांभजानि अभयकुमारनी साथे मुनि आर्द्रकुमारने
वंदन करवा आन्या. तेभ्यो लक्षितयुक्त चित्तथी मुनिने वंदन कथुं.
मुनिंये तेभने " धर्मलाभ " नी आशिष आपी. पछी शुद्र भूमि पर
येकेला मुनिने राज्ये पूछ्यु: ' हे भगवन् ! हाथीना मोक्ष विषे सांभ-
जाने भने धल्लु आश्चर्य थयु छे.' मुनि ज्येल्था: ' हे राज् ! हाथीने छेडा-
ववानुं काम ज्येठुं कठलु नथी ज्येठुं काया सूतरना तारोथी छूठुं
कठलु छे.' राज्ये पूछ्यु: ' महाराज् ! ये केवी रीते ? ' त्यारे मुनिंये
तेने पोतानी आपी कलाणी कडी संभजानी. पछी आर्द्रकुमारने अभय-
कुमारने कथुं के " आप मारा उपर विनाकारण उपकार करवावाणा मारा

धर्मलाभ हो. हे मित्र; तमे भोक्त्रेयी जिन भगवाननी प्रतिमाना दर्शनथी न मने पूर्वभवतुं ज्ञान थयुं अने हुं जिनधर्ममां ज्यनुरक्त थये.

[सं०] इदशोपायं विना मम जैनधर्मप्राप्तिः कुतः । अनार्यत्वमहापंके निमग्नेहं त्वयोद्धृतस्त्वत्प्रसादादेव च मे चारित्र्यावाप्तिर्जाता । ततः श्रेणिकाभयकुमारादयः सर्वेपि लोकास्तमृषिं वेदित्वा तुष्टमानसाः स्वस्थानं ययुः । ततो मुनि राजगृहपुराभ्यर्णे सम-वसृतं श्रीवीरस्वामिनमभिवंध्य तच्चरणकमलसेवया स्वकीयं जन्म सफलीकृत्य क्रमेणायुःक्षये शिवं प्राप । [इति श्री-जिनदर्शनमहात्म्ये आर्द्रकुमारदृष्टान्तः]

[हिन्दी] इस तरह के उपाय के बिना मुझे जैन धर्म की प्राप्ति कैसे होती । मैं अनार्यत्व के महान् कीचड़ में पड़ा हुआ था, आपने ही वहाँ से मेरा उद्धार किया, तुम्हारी कृपा से मुझे चारित्र्य की पुनः प्राप्ति हुई । इस तरह सारी कथा सुनकर श्रेणिक राजा और अभयकुमार आदि सब आनन्द कों प्राप्त हुए, मुनि का वन्दन कर प्रसन्नचित्त से अपने २ स्थान को चले गये । तदन्तर स्वयं आर्द्रकुमार मुनि ने राज-गृही में जा कर महावीरस्वामी के चरणों में वन्दन किया । उनके चरणों की सेवा से अपने जीवन को सफल बना कर क्रमशः उम्र के समाप्त होने पर मोक्ष को प्राप्त हुआ । (यह श्री जिनदर्शन महात्म्य को बनाने वाला आर्द्रकुमार का दृष्टान्त पुरा हुआ)

(२७०) आ जतना आपे करेला उपाय विना मने जैनधर्मनी प्राप्ति केवी रीते थात ? हुं अनार्यत्वना महान धीथडमां पडये छतो, आपे न त्यांथी भारे उद्धार कर्ये छे, अने आपनी न कृपाथी मने चारित्रनी पुनः प्राप्ति थध छे. "

आ प्रमाणेनी आपी कथा सांभलीने राज श्रेणिक तथा अभय-कुमार वगेरे सौ आनंदित थया. अने मुनिने वंदन करीने प्रसन्नचित्त थधने पोत-पोताने स्थाने गया. त्यार पछी स्वयं आर्द्रकुमार मुनिअे राजगृही नधने महावीरस्वामीना चरणेषुमां वंदन क्युं. तेमना चर-ण्णानी सेवामां पोतानुं एवन सङ्ग पनावीने कालकमे आयुष्य समाप्त थतां पोते भोक्षपदने पाभ्या.

[श्री जिनदर्शन महात्म्यने दशावतुं आर्द्रकुमारनुं दृष्टान्त पुरुं थयं.]

विशेष :—

इस लिए हे भक्त्यो ! जो शुद्ध भावना से जिन भगवान की प्रतिमाका निरन्तर दर्शन करेगा वह आर्द्रकुमार की तरह अनन्तानन्त शाश्वत सुख को प्राप्त होगा ।

जिनेश्वर भगवान की प्रतिमाजी के दर्शन से और भी कई लोग प्रतिबोध को प्राप्त हुए हैं । इनमें " सिद्धजंभव भट्ट " की कथा श्रोतव्य है :—

राजगृही नगरी में एक सिद्धजंभव नाम का ब्राह्मण रहता था । वह जैसे तो पढ़ा लिखा था परन्तु अज्ञान वश पाप दोष को नहीं जानता था । वह अपने धर्म को जानकर निरन्तर इवन क्रिया करता था । एक बार अवसर देखकर जम्बू-स्वामी के शिष्य प्रभवस्वामी ने विचार किया कि मैंने पाट पर घैठन योग्य कौन हैं ? उन्होंने श्रुत बोध से यह बात समझ ली और सिद्धजंभव ब्राह्मण को इसके योग्य समझा । अब सिद्धजंभव को प्रतिबोध देना आवश्यक था । अतः उन्होंने अपने २ साधुओं को उस ब्राह्मण के घर भेजा और कहा कि तुम लोग उसके दरवाजे पर जा कर जोर से संस्कृत भाषा में " अहो कष्ट महोर्कष्टं तत्त्वं न ज्ञायते परं " ऐसा कहना । (अरे बड़े दुःख की बात है की महान तत्त्व की वस्तु को नहीं जानता) इस तरह से साधु कह कर उसके दरवाजे से वापस लौट आये । ब्राह्मण ने जब यह सुना तो उसे बहुत क्रोध आया । उसने कहा, कि मूज से ज्यादा तत्त्व को जानने वाला कौन हैं ? और वह क्रोधावेश में इन साधुओं के पिछे दौड़ा । वह वहां पहुंचा जहां प्रभवस्वामी विराजमान थे वहां उसने प्रभवस्वामी से कहा " तत्त्व क्या वस्तु है ? " गुरु ने कहा, " जीवहत्या न करना, यही तत्त्व है, " तब वह फिर बोला, " आप मुझे तत्त्व नहीं बताओं तो मैं इसी समय आपका सिर काट दूंगा । "

[शु०] भाटे हे भक्त्यो ! जो शुद्ध भावनाથી जिन भगवाननी प्रतिमानुं निरन्तर दर्शन करेशे ते आर्द्रकुमारनी जेभ अविचल अने अनन्तानन्त शाश्वत सुखने प्राप्तेशे.

त्रिनेश्वर भगवान्नी प्रतिमाना दर्शनथी पीञ्ज पञ्च धर्या लोकेने प्रतिष्ठाप्य श्रयो छे, जेमां "सिद्धजंभव लट्ट" नी कथा सांभजवा जेवी छे.

राजगृही नगरीमां अेक सिद्धजंभव नामनेा आत्तञ्जु रहतेा छुतेा. ते आम तो भजेजेजे-भजेजेजे छुतेा, पञ्च अज्ञानवश पापदोषने नञ्जुतेा नछेतेा. ते रोज धर्म समञ्जने छुवनकिया कर्था करतेा छुतेा. अेकवार अवसर जेछने नभ्यूसवामीना शिष्य प्रभवस्वामीअे विचार कर्था के छुवे मारी पाट छपर जेसवावाणे कोञ्जु छे? तेभजे श्रुतयोधथी आ वात समञ्ज लीधी अने सिद्धजंभव आत्तञ्जुने तेजे योग्य नञ्जुणे. छुवे सिद्धजंभवने छपदेश देवेा नञ्जुतेा छुतेा. तेथी तेभजे पेताना जे साधुअेने ते आत्तञ्जुने धेर मोकल्या अने कछु के तमे लोके तेना धरना दरवाजे नञ्जुने जेरथी पूम पाटीने संस्कृत भाषामां "अहो कष्ट महोकष्टं, तत्त्वं न ज्ञायते परं" (अरे, दुःखनी वात छे के अपरा तत्त्वनी वस्तुने कोछ नञ्जुतुं नथी.) अम कछेजे अने पञ्जी आख्या आवजे. आ प्रभाजे ते साधुअे कछुने तेना दरवाजेथी पाछा आख्या आव्या.

आत्तञ्जु ज्यारे आ सांभज्युं त्यारे तेने धर्यो कोध आव्यो. तेजे कछुं: 'मारा करतां तत्त्वने वचारे नञ्जुवावाणे पीञ्जे कोञ्जु छे?' कोधा-वेशमां आवीने ते साधुअेनी पाछा होअयो, अने अथां प्रभवस्वामी भिन्नजमान छुता त्यां आव्यो. तेजे स्वामीने पूछ्युं: "तत्त्व शुं वस्तु छे?" सुअेजे कछुं: "छुवहत्या न करवी अे न भुं तत्त्व छे." पछी तेजे कछुं: "तमे मने तत्त्व नछि अतावेा तो आन क्षणे छुं तमारुं माथुं धउथी नुहुं करी नाभीश." "

[हिन्दी] तब गुरुने कहा, "अरे मूर्ख ! तबव तो तुम्हारे घर पर वज्र के स्तम्भ के नीचे हैं सो जा कर देखले ।" इतना सुनते ही वह उलटे पावो चल पड़ा । घर आया, घर आकर उसने वज्र स्तम्भ को उखाड़ डाला । उस के नीचे से श्री शान्तिनाथ स्वामिजी की प्रतिमा निकली जिसे देखकर वह चमत्कृत हुआ । वह वापस गुरुजी के पास आया और उसने गुरुजी के सामने वह प्रतिमा दिखायी । तब गुरु ने कहा, देखो जैसी शान्त मुद्रा इस प्रतिमाजी की है वैसी शान्त मुद्रा में

रहना स्वीकार करो तो तत्त्वप्राप्ति होगी। सिद्धजन्मवने प्रतिमा के दर्शन शान्त चित्त में किये। दर्शन के साथ ही उसे प्रतिबोध हो गया। उसका मिथ्यात्व नष्ट हो गया। वह मिथ्यात्व छोड़ कर घर आया। उसने अपनी गर्भवती स्त्री से कहा, कि अब मैं दीक्षा स्वीकार करता हूँ। तुम अपने घर को संभालो। यह कहकर उसने दीक्षा स्वीकार की। फिर गुरुजी के पास चारह अंग पढ़ें। गुरुने आचार्यपदवी से सिद्धजन्मव को अलंकृत किया। प्रभवस्वामी कालक्रम से समाधि लेकर देव लोक को प्राप्त हो गये। इधर पीछे से उस गर्भवती स्त्रीके बालक उत्पन्न हुआ। उसका नाम "मनक" दिया गये। लड़का धीरे धीरे आठ वर्ष का हुआ। एक दिन बालक 'मनक' अपने साथियों के साथ खेल रहा था तो कुछ साथी उससे लड़ पड़े। इन में से एक लड़के ने कहा! अरे बिना चाप के, तू बुझे क्यों मारता है। यह बात सुनकर मनक माँ के पास आया, और बोला-माताजी! "मेरे पिता है या नहीं?" "माँ रोती हुई बोली : बेटा, चाप विना बालक कैसे हो, " बालक बोला माँ! पिताजी कहाँ गये हैं? माँ बोली बेटा! तू जब गर्भ में था तब तुम्हारे पिताजी को एक जैन साधु ने भ्रम में डाल दिया और अपने साथ ले जा कर साधु बना दिया। अभी भी ऐसा सुना जाता है कि तुम्हारे पिता साधुओं के "मालिक" हैं।" मनक ने जब यह सब सुना तो माता की आज्ञा लेकर वह पिता से मिलने लिए निकला।

[१०] त्वारे गुरुभ्ये कर्तुः 'हे भूर्ज, तत्त्व तो तारे धेर न यज्ञना स्तम्भनी नीचे छे.' आठवुं सांभणतां तरत न ये न पगे पाछे पोताने धेर पड़ोव्यो. धेर आव्यो अने तेखे यज्ञना थांभलाने उभाडी नाप्यो. तेनी नीचेथी भगवान श्री शान्तिनाथ स्वामीनी प्रतिमा नीकणी, जेने जेधने तेने धरुं आश्चर्य थयुं. ते पाछे गुरुजनी पासे आव्यो अने गुरुजने प्रतिमा देखाडी. त्वारे गुरुभ्ये कर्तुः बुज्यो, जेवी शान्त मुद्रा आ प्रतिमानी छे तेवी शान्त मुद्रामां रहेवानुं तमे स्वीकार करो तो तत्त्वनी प्राप्ति थाय. सिद्धजन्मवे प्रतिमानुं दर्शन शान्तचित्तथी क्युं अने दर्शन करता न तेने प्रतिबोध (ज्ञान) थछ गयो. जेनुं मिथ्यात्व नष्ट थछ गयुं. अने ते मिथ्यात्व छोडीने पोताने धेर आव्यो. जेखे पोतानी गर्भवती स्त्रीने कर्तुं के 'उवे हुं दीक्षा अलक्षु करं छुं. तुं उवे

धर संभाजले. એમ કહીને તેણે દીક્ષા ગ્રહણ કરી. અને તે પછી ગુરુ-
જીની પાસે જઈને શાસ્ત્રનાં બારે અંગતું અધ્યયન કર્યું. ગુરુજીએ પણ
તેને આચાર્યપદવીથી અસંકૃત કર્યા. પ્રભવસ્વામી કાલક્રમે સમાધિ લઈને
દેવલોકને પ્રાપ્ત થયા.

અહિં પાછળ તે ગર્ભવતી સ્ત્રીને પુત્ર અવતર્યો જેનું નામ “મનક”
પાડવામાં આવ્યું. એકરો ધીરે ધીરે આઠ વર્ષનો થયો. એક દિવસ
બાળક ‘મનક’ પોતાના સાથીઓ સાથે રમતો હતો તેવામાં કેટલાક
સાથીઓ તેની સાથે લડી પડ્યા. તેમાંથી એક બાળકે કહ્યું: “અરે ન
બાપા ! તું મને શું મારતો હતો ?” આ વાત સાંભળીને મનક
પોતાની માની પાસે આવ્યો અને બોલ્યો ‘માતાજી મારે પિતા છે
કે નહીં?’ મા રોતી રોતી બોલી: ‘બેટા, બાપ વિના બાળક કેમ
થાય ?’ બાળકે કહ્યું: ‘તો પછી મારા પિતાજી ક્યાં છે?’ મા બોલી:
‘બેટા, તું જ્યારે ગર્ભમાં હતો ત્યારે એક જૈન સાધુએ તેમને બ્રમમાં
નાખી દીધા હતા અને સાધુ બનાવીને તેમને પોતાની સાથે લઈ ગયા
હતા. હવે સાંભળ્યું છે કે તારા પિતા સાધુઓના મોટા ગુરુ છે.’
મનકે જ્યારે આ બધું સાંભળ્યું ત્યારે તે માતાની રબ લઈને
પોતાના પિતાને મળવા નીકળ્યો.

[હિન્દી] उसने सुना कि गुरु सिद्धजंभवसूरीजी पांडलीपुर में विचर रहे हैं वह मनक
पांडलीपुर गया। वहाँ के नगर द्वार पर बैठा। गुरु बाहर से वापस आ रहे थे
कि दरवाजे पर ही इस बालक से मिलें। मनक ने उन साधु को वन्दन कर के पूछा
कि बताइये इनमें सिद्धजंभव सूरीजी कौन हैं। साधुओं ने कहा यहां ही हैं; अनन्तर श्रुत
उपयोग दृष्टि से गुरु ने अपने पुत्र को पहचान लिया। वे उसे उपाश्रय में ले आये।
उन्होंने उससे पूछा, “तू यहां क्यों आया है?” में आपसे मिलने के लिए
आया हूँ।” तब सिद्धजंभवसूरी ने कहा, अगर तू वास्तविक मिलाप करना चाहता
है तो तुझे आश्रयो का त्याग करना पड़ेगा। तब ‘मनक’ ने गुरु महाराज से
प्रतिबोध पाकर दीक्षा स्वीकार की। दूसरे साधुओं को भीतर का भेद मालुम नहीं
हुआ। उन्हें यह भी पता न चला कि मनक स्वयं सूरीजी का पुत्र है। अब गुरु ने
उपयोग दृष्टि से देखा तो उसे मालुम हुआ कि मनक की आयुष्य सिर्फ छ मास की
अवधिष्ट है। यह जानकर उन्होंने सर्व शास्त्रों के सारभूत साधुओं के आचाररूपी

सात सौ गाथाओं से युक्त " दशवैकालिक सूत्र " बनाया । यह सूत्र मनक को छ मास के भीतर सीखाया । तदनन्तर मनक ने चारित्र धर्म की आराधनापूर्वक समाधि से काल किया और वह देवलोक को प्राप्त हुआ । उसके अमरलोक की प्राप्ति का वृत्तान्त देखकर सुरीजीजी आंखों में आंसु आ गये । यह देख कर दूसरे साधु बोले, " महाराज ! आप जैसे विस्मय पुरुष भी मोह के वशीभूत हो जाओगे तो दूसरे लोग होवें तो आश्चर्य की बात क्या ? " गुरु ने कहा; " मोह नहीं है । परन्तु आश्चर्य की बात है, " साधु बोले, " महाराज ! क्या आश्चर्य हैं ? " तब सुरीजी ने कहा, " इस साधुने स्वल्प दिनों में ही अपनी आत्मा का कल्याण कर दिया । " इतना कह कर मनक का सारा पिछला वृत्तान्त सुनाया ।

[१०] तेषु सांभल्युं के गुरु सिद्धलवसूरिण पाउलीपुरमां विचरी रत्ना छे. मनक पाउलीपुर गयो, अने नगरना द्वार पर भेरी गयो. गुरुण पदरथी पाछ आपी रत्ना छता. हरवाणमां न ते पाणकने मज्या. मनके साधुआने वंदन करीने पूछ्युं के कहे, 'आमां सिद्धलवसूरिण कोणु छे ?' साधुआने कहुं: 'आ रत्ना.' पछी श्रुत उपयोग दृष्टिथी गुरुआने पोताना पुत्रने आणपी दीधो. ते तेने उपाश्रय मां जस आन्ना. तेमणे ते पाणकने पूछ्युं: 'तुं आडीं शा माटे आण्यो छे ?' पाणक आण्यो: 'हुं तमने मणवा आण्यो छुं.' त्वारे सिद्धलवसूरिआने कहुं के 'जे तुं अरेअर न मने मणवा आहते छे तो, तारे जवा आश्रयोना त्याग करवो पडरी.' मनके गुरुमहाराज पासेथी उपदेश अहणु करीने दीक्षा लीधी. अने साधुआने अंदरना भेदनी कांछ अपर पडी नही. तेमने आ पणु अपर न पडी के मनक सूरिणने पुत्र छे, हवे गुरुआने ज्वारे उपयोगदृष्टि थी ज्ये तुं त्वारे तेमने जणायुं के मनकनुं आण्यो हवे इकत छ महिनातुं न आडीं रहुं छे. आ जणुने तेमणे जवा शास्त्रोना सारउप अने साधुआना आचारउप सातसो गाथाओवाणु 'दशवैकालिक सूत्र' रच्युं. आ सूत्र तेमणे मनकने छ महिनानी अंदर शीअपी दीधुं. त्वार पछी मनके चारित्रधर्मनी आराधनापूर्वक समाधि लीधी अने काण करीने देवलोकने पाभ्यो. तेनी अमरलोकनी प्राप्तिने वृत्तान्त दिव्यदृष्टिथी जेधने सूरिणनी आंजोमां आंसु आण्यो. आ जेधने अने साधुआने

जोड्या: "हे महाराज ! आप जेवा विस्मयइय पणु जे मोडने वश थई नय तो जीनज्यो थाय तेमां शुं आश्चर्य ?" गुरुज्ये कहु: "जे मोड नथी पणु आश्चर्यनी वान छे" साधुज्योअे कहु: "महाराज, शुं आश्चर्य छे ?" त्यारे सूरिलज्ये कहुं के "आ साधुज्ये घणुओओ वपतमां ज पीताना आत्मानुं कल्याणु करी लीधुं." आम कहीने तेमजे मनकनी आपी वात तेमने कही संबजावी.

[हिन्दी] तब साधुओंने कहा, "हे महाराज ! आपने हमें तो यह बात कभी नहीं जनाई ?" गुरु ने कहा कि अगर मैं आपको पहले ऐसा जना देता तो इसकी आत्मा का कल्याण नहीं होता। फिर उन्होंने कहा, यह "दशवैकालिक सूत्र" मनक के लिए ही बनाया था अतः अब इसे नष्ट कर दें। तब श्री संघने अरज की कि यह ग्रन्थ आने वाले समय में स्वल्प बुद्धिवाले जीवों के उपयोग में आवेगा तब इससे महान उपकार होगा। संघ के द्वारा ऐसी विनती करने पर गुरु महाराजने उस ग्रन्थ को कायम रखा। कई वर्षों के बाद श्री सिद्धजंभवसूरीजी भी भव्य जीवों को प्रतिबोध देते हुए समाधि से काल धर्मानुसार देवलोक को प्राप्त हुए। अतः श्री जिन प्रतिमा के दर्शन के लाभ से मिथ्यात्व नष्ट हो जाता है। और मन निर्मल हो जाता है। इस लिए इस पर्युषण महापर्व में दर्शन, पूजा अवश्य करना चाहिये जिससे सुख की प्राप्ति हो।

[इति श्री जिनप्रतिमा-दर्शनोपरि-सिद्धजंभवसुरि-कथानकम्]

[शु०] त्यारे साधुज्योअे कहुं: "हे महाराज ! आपे तो अमने आ वात क्यारेय पणु कही नहि !" गुरुज्ये कहुं के "जे हुं तमने पडैतथी आ जणुवापी हेत तो तेना आत्मानुं कल्याणु न थात." पछी तेमजे कहुं के आ दशवैकालिकसूत्र में मनकने माटे ज रच्युं छतुं, तेथी हुवे तेना नाश करी हेवा जेछज्ये, त्यारे श्री संघे तेमने अरज करी के "आ अंथ हुवे जे समय आवशे तेमां थोडी बुद्धिवाणा लयेना उपयोगमां आवशे तो तेनाथी तेमना उपर मोटे उपकार वशे." संघ द्वारा आवी विनती थतां गुरुमहाराजे ते अंथ ने रडेवा दीधे.

केटवाय्येक वर्षी पत्नी श्री सिद्धार्थवसुरिश्च पशु अन्य लवोने प्रति-
प्राध देता थका सभाविथी काणधर्म प्रभाषे देवलोकने प्राप्त थया

श्री जिन भगवान्नी प्रतिमाना दर्शनना बालथी मिथ्यात्व नष्ट थध
नय छे अने मन निर्माण थध नय छे. भाटे, आ पुरुषेषु महापर्वमां
दर्शन, पूजा, अवश्य करवां जेभ्ये, जेथी सुखनी प्राप्ति थाय.

[इति श्री जिन प्रतिमा दर्शनमहात्म्यमां सिद्धार्थवसुरी कथानक पूरं.]

[हिन्दी] और भी इस पर्व के आने पर भगवान से उपदिष्ट श्राद्धों की वाणी
सुनना चाहिये। जिन मनुष्योंने भगवान की वाणी को नहीं सुनी वे मानव रूप में
पशु तुल्य हैं। अगर कोई प्राणी बिना मन के भी भगवान की वाणी को सुनता है
वह भी रोहिण्या चोर की तरह आत्मा का कल्याण कर लेता है।

रोहिण्या चोर की कथा —

राजगृही नगरी के बाहर 'वैभारगिरि' नाम का एक पर्वत था। उस पर्वत की
सीमा में बहुत सुन्दर एक गुफा थी। उस गुफा में महापापी, चंडाल स्वभाववाला
परस्त्रीगामी, परधनावहारक सर्व प्रसिद्ध "लोहखुर" नामका एक चोर रहता था।
वह चोर राजगृही में निरन्तर चोरिया किया करता था परन्तु किसी के भी दृष्टिगोचर
नहीं होता था। इस चोर के पुत्र का नाम 'रोहिण्य' था। यह रोहिण्य भी धीरे
२ चौर्य कार्य में प्रवीण हो गया। एक बार लोहखुर बमार पड़ा। वह मरने जैसा
हो गया। उसने अपने पुत्र रोहिण्य को अपने पास बुलाकर कहा, "प्रीणानि यः सुच-
रितैः पितरं स पुत्रः" जो अपने पिता को अपनी करनी से प्रसन्न करें वही पुत्र है।
अतः हे पुत्र! मैं तुम्हे एक बात कहता हूँ जो तू उसे माने तो मेरा पुत्र है।
पुत्र ने कहा "पिताजी! कहिये ऐसा कौन मूर्ख है जो अपने पिता की आज्ञा
नहीं माने, आप जो कहेंगे वही मैं करूँगा। आपकी आज्ञा कभी भी नहीं छोड़ूँगा।"
पिता ने कहा, "हे पुत्र! यहां एक "महावीर स्वामी" नाम का ऐन्द्र जालिक आया
है वह समोसरण में बैठ कर लोगों को इकट्ठा करके धर्मोपदेश देता है, उस की बात
तू कानों से मत सुनना। पुत्र ने कहा कि हे पिताजी! मैं उनकी बातें नहीं
सुनूँगा। आप आनन्द में रहो। पुत्र का ऐसा वचन सुनकर लोहखुर प्रसन्नचित्त हो
प्राणों को छोड़ दिया।

[गु | वणी आ पर्व आवे त्पारै भगवाने उपदेशैवां शास्त्रोनी वाणी सांभजवी त्नेछ्छे जे भाषुसोअये जिन भगवाननी वाणीने सांभजनी नथी ते मानवइपे पशु जेवा छे कोछ प्राणी अनिअजअये पशु जिन भगवाननुं वाणी सांभजनी छे, ता रोडिछुया चोरनी जेम तेना आत्मानुं पशु कल्याण थछं नथ छे.

रोडिछुया चोरनी कथा.

राजगृही नगरीनी गडार 'वैभारगिरि' नामनो अेक पर्वत छेतो. ते पर्वतनी तणेटीमां धखी सुंदर अेक गुहामां महा पापी अने अंडाण जेवा स्वभाववाणो, परस्त्रीगामी, भीजन. धननुं हरणु करवावाणो अने लोकामां गवायेलो अेक प्रसिद्ध 'लोहपुर' नामनो चोर छेतो. ते चोर राजगृहीमां उमेश चोरिआ कथां करतो छेतो, पशु कोछनी नजरै पडतो नछेतो. आ चोरना पुत्रनुं नाम 'रोडिछुय' छेतुं. आ रोडिछुय पशु धीरे धीरे चोरविद्यामां प्रवीणु थछं गथे. अेकवार लोहपुर भीमार पडथे, ने भरवा जेवो थछं गथे. तेषे तेना पुत्र रोडिछुयने भासे आलाचीने कछुं: "प्रीणाति यः सुचरितैः वितरं स पुत्रः" "जे पोताना पिताने पोताना कामेथी फुस करे ते ज सांचे पुत्र छे. माटे छे पुत्र ! छुं तने अेक वात कछुं छुं, ते तुं माने तो भारो सांचे पुत्र कछेवाय." पुत्रे कछुं: "पिताछ, कछे. जेवो कोष भूर्भ हसे जे पोताना पितानुं कछुं नछि माने ? आप जेम कछेशो ते प्रभासे ज छुं करीश. आपनी आज्ञानुं कही उखवधन नछीं करुं" पितामे कछुं: "छे पुत्र, अही" "महावीर स्वामी" नामनो अेक छन्दबजणी आव्यो छे, ते समोवसरणुमां जेसने लोकाने बेगा करीने धर्मोपदेश आपे छे, तेनी वात कही सांभजतो नछीं. "नीकराअे कछुं के "पिताछ, तेनी वात कही नछीं सांभजुं. आप निश्चित रह्ये." पुत्रनुं आवुं वचन सांभजनीने "लोहपुर" प्रसन्न थथे अने पोताना प्राणुनो त्याग कथां.

[हिन्दी] मरने के अनन्तर वह नरक लोक को प्राप्त हुआ। "संसार में ऐसे पापी भी अनेक हैं जो स्वयं धर्म कभी नहीं सुनते और जो श्रवण करें,

उसे भी मना करें, उन पापियों के लिए नरक के शिवाय कौन सा ठिकाना है।” अब रोहिण्य भी पिता और्ध्वदहिक क्रिया कर्म से निवृत्त हो पुनः चौर्य कर्म करने लगा। एक बार महावीर स्वामी विहार करते करते रोहिण्य जिस मार्ग से निकलता था उसी मार्ग में समीसरण परिषद इकट्ठी हुई, उन्होंने उपदेश देना प्रारम्भ किया। इनमें में ही सामने रोहिण्य आया। उसने समीसरण देखा, वह विचार करने लगा कि यही ऐन्द्रनालिक महावीर स्वामी हैं। अगर इसकी वाणी कानों में पड़ गयी तो पिताजी की आज्ञा का भंग हो जायगा। मैं महापापी हो जाऊंगा। पर अब दूसरा रास्ता भी नहीं है फिर भी इसका वचन कानों से सुनना ठीक नहीं है। ऐसा विचार करके कानों में अंगुली डालकर जोर से दौड़ा। किन्तु दैवयोग से उसके पांव में कांटा लग गया। अतः वह चलने में असमर्थ हो गया। जब वह एक हाथसे कांटा निकालने लगा तभी तत्काल भगवान के वचन उसके कानों में पड़े, १. देवता आंखे नहीं (टमकारते) फुरकाते हैं। २. देवताओं की फुलमालाएँ नहीं कुम्हलाती हैं। ३. देवता पृथ्वीसे चार अंगुल ऊंचे रहते हैं। ४. देवताओं के शरीर में पसीना होता नहीं है। ये चार वचन भगवान के रोहिण्य के कानों में पड़े। तब वह सोचने लगा कि हाय! हाय! मैंने पिता की आज्ञा का उल्लंघन किया। कांटा निकालने का तो परिश्रम किया परन्तु महावीर के वचनरूप कांटा लग गया। अब क्या करें। वह ज्यों ज्यों पछताता है त्यों त्यों महावीर के सुने हुए वचन रोहिण्य के हृदय में पक्के होते जाते हैं अब वह कठोर हृदय करके राजगृही नगरी में चोरी करने के लिये गया।

[शु०] भर्था पछी ते नरकमां गया. ससारमां अवा पापी लोको अनेक छे, जेअ्या पोते धर्मकथा कही सांभगता नथी पणु जे सांभगे छे तेने पणु मना करे छे. अवा पापी लोको माटे नरक सिवाय जीवुं कयुं ठेकायुं छे ?

उव रोहिण्य पणु तेना पितानी उत्तरकिया समाप्त करीने करी-
वार पोताना थारीना धंवामां लागी गया. अकवार महावीरस्वामी
विहार करता उता, तेमां रोहिण्य जे मार्गे नीकणतो उतो ते मार्गमां ज
तेमना उपदेशनी परिषद जेगी थक, अने तेअ्या धर्मोपदेश देवा लाग्या.
अटलामां सामेथी रोहिण्य आअ्यो आवतो उतो. तेणु समीसरणु जेअिने

विचार कर्षो के आ ज ते छन्दबली महावीरस्वामी छे. जे तेनी वाणी
 मारा काने पडी गछ तो पितान्नी आज्ञानो अंग थरी अने मने पाप
 लागरी. पणु हुवे जवानो अन्ति कोछ मार्ग पणु नथी अने अर्द्धीधी
 पसार थछंश तो आना वचनो काने पडी जरी तो ते ठीक पणु नहि
 थाय. अवेो विचार करीने कानेमां आंगणीओ भरवीने तेजे त्याधी
 होट मूडी, पणु दैवयोगे तेने पगमां कंटो वाग्यो, तेथी ते आक्षवाभां
 असमर्थ थछं गयो. ते ज्यारे अेक छाये कंटो कढवा लाग्यो त्यारे अग-
 वानना नीयेना वचनो तेने काने पडयां (१) देवताओनी आंओ इर-
 कती नथी (२) देवताओनी कुलनी भाणाओ कती करमाती नथी. (३)
 देवताओ पृथ्वीथी आर आंगण छाये रहै छे. (४) देवताओना शरीरभां
 परसेवो थतो नथी आ आर अगवानना वचनो रोडिछियेना काने पडयां
 त्यारे ते विचार करवा लाग्यो: लाय लाय ! में मारा पितानी आज्ञानुं
 उल्लंघन कयुं. पगनो कंटो में कढी नांभ्यो, पणु महावीरना वचन
 र्पी कंटो मारा हृदयभां पेसी गयो. हुवे हुं शुं करुं ! ते जेम जेम
 भरतातो जतो छतो तेम तेम महावीरस्वामीनां सांभणेवा वचनो तेना
 हृदयभां उतरिने पाछां थतां जतां छतां. छतां ते कठोर हृदय करीने राज-
 गृहीमां थारी करवा गयो.

[हिन्दी] उसी दिन नगर के सारे सहकारोंने इकट्ठे होकर अणिक राजा से
 निवेदन किया, हे राजन् ! आपके राज्य में चोरो का उपद्रव ज्यादा बढ़ गया है।
 घरमें बैठे हुए ही हमें दरिद्र बनता जा रहा है। यह सुन राजाने कोतवालको
 बुलाकर कहा, “क्यों जी ! नगर में यह क्या उत्पात है ? तुम चौर को पकड़ नहीं
 सकें।” कोतवालने कहा, “महाराज ! मुझे मालुम है यह चौर रोहिण्य है।
 परन्तु यह चौर्य कार्य में इतना दक्ष है कि पकड़ में नहीं आ रहा है। यह भी
 पता नहीं चलता कि यह कब आता है और कब जाता है। मैं तो इसे पकड़ने
 में अपने को असमर्थ पाता हूँ। आप आहें तो मुझे कोतवाल पदसे मुक्त कर सकते
 हों। तब राजाने अभयकुमार की तरह देखा, तब अभयकुमारने कहा, “मैं इस
 चौर को सात दिन में पकड़कर के हाजर कर दूंगा, अगर मैं ऐसा न कर सका तो
 चौर की सजा मुझे मिले।” ऐसी प्रतिज्ञा कर उसने नगर में सर्वत्र पहरेदार चौर
 का पता लगाके हेतु नियुक्त किये। तो भी नगरमें चोरी हो गई और चौर हाथ

नहीं आया। इस तरह चौकमी रखने पर भी छः दिनों तक चोर नहीं पकडा गया। सातवें दिन सब रास्तों पर चौकीदार बैठाये, नगर में मुहल्ले २ में चौकीदार बैठाये कोट के बाहर आदमी बैठाये, और साँझ होते ही चोर चोरी करने के लिए नगर में घुसा, सुभटों ने आकार से उसे पहचाना। ज्यों ही वह किसी साहूकार के घर में घुसा त्यों ही लोगोंने हल्ला किया। खोर होते ही वह चोर घर परसे बन्दर की तरह कूदता २ कोटके पास आकर कोट से कूद पडा। तन्काल सुभटों ने उसे पकड लिया और अभयकुमार के समक्ष उपस्थित किया। अभयकुमार प्रसन्न हुआ। वह उसे सन्मुख ले गया। राजाने चोर से पूछा कि तुम कहां रहते हो? चोर बोला, "महाराज! मैं सालगाँव का निवासी हूँ मेरा नाम दुर्गेचंड है, मेरे घर लक्ष्मी का विहाह है, अतः चीज वस्तु लेने के लिए मैं नगर में आया। सायंकाल के समय अपने गाँव जा रहा था तब आपके राजपुरुषोंने चोर चोर कहकर मुझे पकड लिया। अब आपकी इच्छा हो, वह विचार कर करी। जो आपकी दण्ड देने की इच्छा हो तो आप स्वामी हो मैं क्या कर सकता हूँ? राजाने गुप्त-चरों को भेजकर सारा वृत्तांत जाना। उसने चोर का वृत्तांत सत्य पाया। तब चोरने पुनः निवेदन किया कि महाराज! यदि अभयकुमार की बात ही रखनी हो तो आप भले ही मृत्यु दण्ड दे दो।

[१००] ते ञ दिवसे शहेरना तथा शेरियाओअे बेगा यरने श्रेष्ठिक राजने इरियाह करी के "हे राजन्! आपणा राज्यमां चोरिनेो उपद्रव धरो वधी पडयो छे. घरमां पिडा पिडा अमे दरिद्र अनता ञधये श्रीअे." आ सांभजीने राजअे कोटवाणने जोलाओ अने कहुं: 'केम जाधं! शहेरमां आ शो उत्पात छे? तमे चोरने पकडी शकता नथी?' कोट-वाणे कहुं: महाराज, मने अणर छे के अे चोर शेरिणुय ञ छे, पणु चोरविधां अे अेटलो प्रवीणु छे के आमारी पकडमां अवतो नथी. अे पणु अणर रहती नथी के अे क्यारे आवे छे, ने क्यारे नय छे. हुं तेने पकडी शकेश नहि. अेम मने जागे छे, आप चाडो तो मने कोटवाण पदेथी मुक्त करी शके छे.' तयारे राजअे अबयकुमार सामे अेधुं. अबयकुमारे कहुं: 'हुं आ चोरने सात दिवसमां पकडीने आपनी समक्ष लाजर करीश. अे हुं अेम न करी शकुं तो चोरने अे सब थाय

ते भने भजे.' आवी प्रतिज्ञा करीने तेशे थोरने पकडवा माटे शड्डे सर्वत्र थोडीदारे गोडवी दीवा. तो पणु शड्डेरमां थोरी थड् अने थोर लाथ पणु न आव्यो. आवी रीते थोडसाध राभवा छतां छ दिवस सुधी थोर लाथमां आव्यो नडां. सातमे दिवसे पधा ररना उपर थोडीदारे गोडव्या अने ते उपरांत भडोदसे भडोदसे पणु थोडीदारे गोडवी दीवा. शड्डेरना कोटनी अडार पणु भाषुसो गोडव्या लता. सांज थनां न थोर थोरी करवा माटे शड्डेरमां धुस्यो. सैनिकोअे तेने आकारथी ओणप्यो. जेयो ते कोठ शेंकियाना धरमां थोरी करवा धुस्यो तेयो न लोकोअे शोरभंडार करी भूक्यो. पूम अराडा थतां न थोर धरे उपरथी वांदरानी जेम कुदतो कुदतो कोट सुवी गयो अने कोट उपरथी अडार कुनी पड्यो. तरत न सैनिकोअे तेने पकडी लीयो, अने अमयकुमार पामे लावर क्यो. अमयकुमार प्रसन्न थया. ते तेने राज सभस लठ गया. राजअे थोरने पूछ्युं के "तुं क्यां रडे छे?" "महाराज! हुं सावगांवने रडेवाशी छुं; मारुं नाम दुर्गाचंड छे. मारे घेर हीकरनां लग्न छे तेथी अंज-वरतु देवा माटे शड्डेरमां आव्यो लतो अने सांजे मारे गाम नठ रडो लतो त्यां सैनिकोअे "थोर, थोर," कड्नीने भने पकडी लीयो. लवे आपनी अंज्यामां आवे तेभ करे. भने हंट देयो डोय तो आप मालिक छे, हुं थुं करी शकुं!" राजअे गुप्तथरोने भोडलीने पधी लुकीकत जाल्यां, तेमना कडेवा उपरथी थोरनी वात साथी जाल्यां थारे थोरे करी निवेदन क्युं के "महाराज, छतांय आपने अमयकुमारनी वात साथी लागती डोय तो आप भने भूत्युहंड आपी शके छे "

[हिन्दी] राजा विचार करने लगा कि, "अपने अन्याय कैसे करे ?" उन्होंने अमयकुमार की तरफ देखा। अमयकुमारने विचार किया कि वह चोर पकड़ा है और साथ कपटी भी है अतः इसी के मुख से सत्य स्वीकार करना चाहिये। ऐसा विचार कर राजा से कहा "हे राजन्! मैंने गलती की है, यह तो साँझकार है इसकी इज्जत कम हुई अतः मैं इसका सम्मान कर इसे विदा करूँगा" इतना कहकर वह चोर को अपने महल में ले गया। वहाँ उसने उसे सुन्दर भोजन से सत्कृत किया और मौफा देखकर 'चन्द्रहास्य' मदिरा पिला दी। इससे भोजन

करते २ ही उसे नींद आ गई। तत्काल अभयकुमार ने एक आवास को देवलोक की तरह सज्जित किया। उस कक्ष में उनमें अनेक प्रकार के विचित्र चित्राभरण कराये, थान २ पर मोतियों की झालरें लटका दी, जगह २ पर फूल मालाओं के ठेर ठेर लटका दिये। जगह २ सुगन्धित धूप से वायुमण्डल को सुवासित किया। सुगन्धित अक्षर लटकाया, आवास पर सुन्दर ध्वजाएँ फरकाई, बहुत सुन्दर छतां बनवायी, आवास के मध्य भाग में अनेक तोरण युक्त एक "देवल्लन्दी" बनवाई, उसमें अतिव सुन्दर "देवशय्या" बनाई; फिर सर्वोत्तम सुन्दर षोडशी बालाओं को बुलाकर षोडश शृंगार कराकर हाथों में मृदंगादि वाजिंत्र देकर ८ वेदयात्रों को खड़ा किया। तदन्तर मूर्च्छित अवस्था में ही उस चौर रोहिण्य को वहां महल में बुलाकर सुला दिया। दो चार घड़ी के बाद चौर का नशा उतरा जब उसने आँखें खोलकर देखा तो उसे साक्षात् देवलोक जैसा भवन नजर आया। वह विचार करने लगा कि मैं कहां आ गया? क्या मुझे स्वप्न तो नहीं आया? ऐसा विचार कर ही रहा था कि इतने में अभयकुमार के सिखाये हुए कल्पित देव-देवी आकर के "जय जय नंदा जय जय भद्रा" ऐसे शब्दों से उन्हें बंधाकर बत्तीस बद्धनाटक करनेको तैयार हुआ।

[शु०] राज विचार करवा लाग्या के आपस्याथी अन्याय केम थाय ? तेमणे अभयकुमारनी सामे लेधुं. अभयकुमारे विचार कथीं के आ चोर पाके छे अने साथे साथे कपटी पणु छे; अटले हवे तो तेने भोढे न सायुं कडेपरावपुं लेठये. आवे! विचार करीने तेणे राजने कथुं : "महाराज, में लुली करी छे. आ तो शाहुकार छे. तेनी जतनाभी धर तथी हुं हवे तेनुं सन्मान करीने पणी तेने विदाय आपीश." जेम कडीने ते चोरने पोताना महेलमां जर्ध गथे. तेना सत्कार करीने तेने सुंदर भोजन कराव्युं; अने लाग लेठने तेने 'यंद्रहास्य' भदिरा पाठ दीधी. आथी भोजन करतां करतां न तेने शोध आवी गर्ध. तरत न तेणे अक हवेलीने देवलोक लेथी शशुगारी : अक आरजामां अनेक प्रकारनां यित्रो यितराव्यां, देकाणे देकाणे भोतीनी जालरो लटकावी अने कुलनी भाणाओना दगलाना दगला चारे आणु लटकावी दीधा. देकाणे देकाणे सुगन्धित धुपथी वातावरणुने सुवासित पनावी दीधुं. सुगंधी अक्षरो छंटाव्यां. हवेली उपर सुंदर धलओ करकावी, सुंदर यंदरवा पंधाव्या. अने हवेलीना मध्यभागमां अनेक तोरणे युक्त अक मंडप

बंधाव्यो. तेमां अेक भूष सुंदर छत्रपलंग पिछाव्यो; अने पछी सर्वांग-सुंदर सौण वरसनी सुंदरीयो जालावनि तेने शंगार सजवी हाथमां मृदंग आपी अने वगाडवानी आज्ञा करी उपरांत आठ वेश्याओने जालावनि गायन-वादन आबुं कराव्या. पछी मूर्च्छित अवस्थामां ज ते चार रोहिण्येने ते महेलमां सुवरावी दीषि. जे चार धडी जनां ज्यारे तेना नथो उतर्यो अने तेजे आंयो उधाडीने ज्येयुं तो साक्षात् देवशोक ज्येयुं अंधुं नजरें पडयं. ते विचार करवा लाग्यो के हुं क्यां आवी गयो! शुं भने स्वप्न तो नथी आव्युं! अेयो विचार करी रह्यो हुतो अेटलाभां अभयकुमरे शीषव्या प्रमाजे पनावटी देव-देवीओमे आवीने "जय जय नंदा, जय जय भद्रा" अेया शब्दोथी जय जयकार करी अने घेरी वज्या अने नाटक करवा तैयार थया.

[हिन्दी] तत्काल ही एक "गुरु स्थानिक देवता" आवा और कहने लगा कि 'हे देवानांप्रिय ! तुम यहां देवलोक में देवतारूप में उत्पन्न हुए हो, अतः अब से आप इस विमान के मालिक हो। अब आप अपने पूर्वभव को कहिये। आपने पिछले भव में क्या धर्म और कर्म किये जिससे आप देवता बनें, सो जल्दी कहो, फिर आप देवताओं के योग्य भोगों का उपभोग करो। वह चौर गुरुस्थानिक देवता के ऐसे वचन सुनकर विचार करने लगा कि "क्या यह देवलोक है या अभय-कुमार की कपट क्रिया है ?" ऐसा विचार करते ही महावीर के वचन याद आयें। उसने निश्चय किया कि अगर महावीर स्वामीने जा बातें कहीं थी वे इसमें मिल जाय तो देवलोक है नहीं तो अभयकुमार रचित कपटलीला है। ऐसा निश्चय कर उसने देवताओं की तरफ गौर से देखा। तो देखा वे देव और देवियां अस्त्रि मटका रही हैं, उनके शरीर पर पसीना है, गले में रही हुई कुलामालाए कुम्हला गई हैं उनके पैर भूमी से लगे हुए हैं। भगवान के कथनानुसार एक भी बात उसमें नहीं मिल रही थी। तब चौर उस मायाजाल को जान गया। अतः बोला, अरे नाटककारो ! मैने तो पूर्वभव में खूब दान दिये हैं, शील पाले हैं, सद्गुरु की सेवा की है, अरिहंत देव की पूजा की हैं, सात व्यसनों से रहित होकर व्रत और नियमों का पालन किया है, कई मन्दिरों में जिर्णोद्धार कराये हैं, इत्यादि पुण्य कार्यों से ही मैं देवता बना हूँ तब गुरुस्थानिक देवताने कहा, "अगर वचन में भी कोई पाप किया हो तो कहो ?" तब चौरने कहा, "अरे ! तुम बड़े

પૂર્ણે હો, વિચાર તો કરો કિ મેંને શ્રાવક કુલ મેં જન્મ લિયા હૈ, વહાં પાપ કા કયા કામ ! મેંને જન્મ સે લેકર મૃત્યુ તક છાનકર જલ પિયા, સ્વપ્ન મેં મી અન-છાને જલકા સ્પર્શ તક નહી કિયા । નિરન્તર પોષધ, પ્રતિક્રમણ કિયે હૈ, સાધુઓં કી સંગતિ કી હૈ ।

[ગુ૦] પછી તરત જ “ ગુરુ સ્થાનિક દેવતા, આન્યા અને કહેવા લાગ્યા કે હું દેવોને પ્રિય ! તમે અહીં દેવલોકમાં દેવતારૂપે અવતર્યા છે તેથી હવેથી આપ આ હવેનીના માલિક છે. આપ હવે આપના પૂર્વ-જન્મનું પૃષ્ઠાંત કહો. આપે આપના પાછલા ભવમાં શું શું કર્યું અને કર્મ કર્યાં કે જેનાથી આપ દેવતા બન્યા તે અમને કહો, અને પછી આપ દેવતાઓને યોગ્ય ભોગો ભોગવો. ” તે ચોર ગુરુસ્થાનિક દેવતાનાં આવાં વચનો સાંભળીને વિચાર કરવા લાગ્યો કે : આ તે દેવલોક છે કે અભયકુમારની કપટલીલા છે ! આવો વિચાર કરતાં જ તેને મહાવીર-સ્વામીએ જે વાતો કહી હતી તે યાદ આવી. તેણે નક્કી કર્યું કે જે તેમણે કહેલી વાતો મળતી આવે તો આ દેવલોક છે અને નહિ તો આ અભય-કુમારનાં આ બધાં કરતૂક છે. એવો નિશ્ચય કરીને તેણે દેવતાઓ તરફ ધ્યાનપૂર્વક જોયું. તેણે જોયું કે તે દેવ-દેવીઓની આંખો ફરકી રહી છે, તેમના શરીરે પરસેવો વળ્યો છે, ગળામાં રહેલી ફૂલની માળાઓ કરમાઈ ગઈ છે. અને તેમના પગો પણ જમીનને અડે છે. ભગવાનના કહેવા પ્રમાણેની એક પણ વાત મળતી આવતી નહોતી, એટલે ચોર આ માયા-બળને પાર્શી ગયો, અને બોલ્યો : ‘ અરે નાટક કરનારા લોકો, મેં તો પૂર્વભવમાં ઘણું દાન આપ્યું છે, સદ્ગુરુની સેવા કરી છે, અરિહંત-દેવની પૂજા કરી છે. સાત વ્યસનોથી મુક્ત રહીને વ્રત અને નિયમોનું પાલન કર્યું છે. કેટલાંયે મંદિરોનો હાથોહાર કર્યો છે, વગેરે ઘણાં પુણ્ય-કર્મોને કારણે જ હું દેવ તરીકે જન્મ્યો છું. ” ત્યારે ગુરુસ્થાનિક દેવતાએ કહ્યું : “ નાનપણમાં પણ કોઈ પાપ કર્યું હોય તો કહો. ” ત્યારે ચોરે કહ્યું : ‘ અરે, તમે લોકો મોટા મૂર્ખ છે. વિચાર તો કરો કે મેં શ્રાવક-કુળમાં જન્મ લીધો હતો એટલે ત્યાં પાપ હોય જ ક્યાંથી ? મેં જન્મથી માંડીને મૃત્યુ સુધી ગળીને જ પાણી પીધું છે અને સ્વપ્નમાં પણ અણુગળ

पाणीने स्पर्श सुखा नथी कर्यो. हंमेशां पौषध अने प्रतिक्रमण्यु कर्यो छे अने साधुओंनी संगति करी छे. "

[हिन्दी] तब देवताने फिर, कहा " कोई छोटी बड़ी चोरी की हों तो याद करो " चोर ने कहा, " अरे भद्रा ! चोरी करने वाला मनुष्य देवलोक में कैसे अवतरित हो ? तुम इतना भी नहीं जानते तो कैसे देवता हो ? भला बताईये तो क्या कोई भी पत्थर की झिला वर बैठकर समुद्र के पार पहुंच सका हैं ? ऐसी बातें जब चोरनें की तो अभयकुमार ने विचार किया कि इस चोरने मेरा कपट जान लिया है तो अब यह ठगा नहीं जायगा, ऐसा विचार कर चोर से कहा, " वाह रें वाह ! तूं भारी चतुर हैं, तुमने मेरी बुद्धि को भी दबा दिया हैं, परन्तु अब सच कहो कि देवलोक है या नहीं ? इस बात की तुम्हें कैसे खबर हुई ? तब उस चोरने मनमें सोचा कि हाय ! हाय ! मेरे पिता को धिक्कार है जो उन्होंने मुझे गलत समझाया, मैंने बिना मनके भगवान के वचन सुनें तो भी मैं अज्ञ जिन्दा रह गया अगर तन मन से सुनें होते तो निश्चय ही आत्मा का करुपाण हो जाता । अब भगवान के पास जाकर धर्मोपदेश सुनकर दीक्षा लेकर श्री भगवान की सेवा में रहूंगा इनका विचार करके वह अभयकुमार से बोला, " हे अभयकुमार ! यह बात श्री त्रिलोकीनाथ भगवान श्री महावीर स्वामीजी के प्रभाव से मैंने जानी हैं । " इतना कहकर उसने अपनी चोरी की सब बातें प्रगट पन से कही और सर्व धन बता दिया, फिर बोला कि अब मुझे भगवान के पास जाकर दीक्षा ग्रहण करना है । चोर के मुख से यह बात सुनकर अभयकुमार चोर को श्रेणिक राजा के पास ले गया, राजा ने चोर से पूछा कि हे चोर ! तुमने चोरी की क्या ? चोर ने कहा, " हा महाराज चोरी की । " तब राजा ने चोर को मार डालने की आज्ञा दी ।

[गु०] त्यारे देवताये करी कहु : ' कोछ नानी-मोटी चोरी करी होय तो याद करो. ' चारे कहु : ' अरे भद्रा भाई ! चोरी करवावाणो भाणुस देवलोकां नन्मे न केम ? तमे अटलुं पालु न्णुना नथी तो पछी केवा देव छे ? शुं कोछ पत्थरनी शिला उपर प्पेसीने समुद्रने तरी शक्यो छे ? ' आवी वातो न्यारे चारे कही त्यारे अभयकुमारे वियार्थुं के नककी आ मारी कपटकजा न्णुनी गयो छे. हवे तेने ठगी शक्यो नहि. आवो विचार करीने तेणे चोरने कहु : ' वाह रे वाह ! तूं अहु चतुर

छे : तं तो मने पलु इववा न दीधा. पलु हुवे सायुं कळे के तने आ देवलोड नथी, तेनी अजर केम पडी ? ” त्यारे चोर मनमां विचारवा लाग्यो के हाथ हाथ ! मारा पिताने धिक्कार छे, जेजे मने भोटो रस्तो पताव्यो. में मन दीधा वगर न भगवाननां वचन सांभण्यां हुतां छतां आजे हुं छवतो रखो छुं, पलु जे में मन दधने भगवाननां वचनो सांभण्यां होत तो मारा आत्मानुं कस्यालु थर्ग गयुं होत. हुवे भगवाननी पासो न्छ धर्मोपदेश सांभर्णीने दीक्षा लर्ग लर्ग अने तेमनी सेवामां न रहुं. आवो विचार करीने तेजे अभयकुमारने कहुं : “ हे अभयकुमार, आ वात त्रिलोकना नाथ भगवान स्वामी महावीरना प्रभावथी न में न्छणी छे. ” आम कहीने तेजे पितानी चोरीनी अधी वात निष्वास पजे न्छेर करी अने चोरेहुं अंधुं घन पताची दीधुं. पछी कहुं के हुवे मारे भगवाननी पासो न्छने दीक्षा अल्लु करवी छे. चोरना मोढे आ वात सांभर्णीने, अभयकुमार चोरने राज श्रेष्ठिक पासो लर्ग गयो. राजन्ये चोरने पूछयुं के चोर, तं चोरी करी छे शुं ? चोरे कहुं : ” हा महा-राज ! चोरी करी छे. ” त्यारे राजन्ये चोरने देहांतदंडनी शिक्षा करी.

अवसर देखकर अभयकुमार ने राजा से हाथ जोड़कर विनति कि कि हे महाराज ! इस चोर के भाव दीक्षा लेने के तब राजा ने कहा, “ बहुत अच्छा ” चोर ने भी जहाँ २ धन रखा था सब जाकर बता दिया और निसका था उसको सौंप दिया । पीछे राजा ने रोहिण्येय चोर का दीक्षा उसव आडभ्वर से किया । रोहिण्येय ने भी श्री महावीर स्वामीजी को नमस्कार करके कहा, “ हे भगवान ! आपकी वाणी है सो मिथ्यात्वरूप तिमिर को नाश करने के लिए धूर्यसमान है, किन्तु मेरे पिताजी के आदेश से मैंने उसे सुना नहीं और बिना मन के थोड़ी सी वाणी कान में पडी जिससे जीवित बचा सो आपने मुझे यहाँ जीवित रक्खा तो अब नरक से भी बचाओ तब भगवान श्री महावीर स्वामी ने बहुत मधुर वचनों से उत्तर दिया, “ अरे भव्य ! इस अपार पारावार रूप संसार में स्वजन सम्बन्धी वगेरह है सब स्वार्थ के साधक हैं, कोई किसी के काम में नहीं आता, जो धर्म कार्य तुम करोगे तो तुम सुखी होगे । इनके साथ पांच महाव्रत पालोगे तो कर्मक्षय करके मोक्ष सुख पाओगे । ” भगवान् का यह उपदेश सुनकर रोहिण्येय चोर प्रतिबोध पाकर भगवान से बोला, “ हे भगवान् ! चारित्ररूप रत्न दिलाओ ! उसके इस तरह विनय करने पर भगवान

ने उसे दीक्षा दी और रोहिण्य ने अपने कुटुम्ब को प्रतिबोध देकर दीक्षा दिलाई।

कोई २ परतो में लिखा है कि अभयकुमार की ठगई में रोहिण्य चोर जब नहीं आया तब अभयकुमार ने श्रेणिक राजा से उसे मुक्त कराया और कहा बिना अपराध यह मारने योग्य नहीं हैं। चोर ने विचार किया कि मैं श्री वीरग्रभु के वचनों से जीवित रहा हूँ। ऐसा विचार कर भगवान को जाकर वन्दन किया, भगवान ने उसे धर्म सुनाया, उनसे प्रतिबोध पाकर दीक्षा लेनेका मन हुआ। भगवान् से कहा—कि मेरे दीक्षा तो लेनी हैं परन्तु श्रेणिक राजा से कुछ बात कहना है सो कहकर वापिस आकर दीक्षा लूंगा। ऐसा भगवान को कहकर वह श्रेणिक राजा के पास आया और बोला, हे राजन् ! रोहिण्य चोर जिसे कहते हैं वह मैं हूँ।

[१००] अक्सर जेठने अभयकुमारे राजने छत्र जेठने विनंती करी के "हे महाराज ! आ थोरने भाव दीक्षा लेवाने छे." राजने कहुं : "धरुं सारुं." पछी थोरने जयां जयां धन दायुं छतुं ते अधुं पतावी दीधुं अने जेनुं जेनुं छतुं तेने सोपी दीधुं. राजने पछु थोरनी दीक्षाने उत्सव भूष धामधुमथी करी.

रोहिण्ये भगवान महावीरस्वामीने नमस्कार करीने कहुं : 'हे भगवान आपनी वाणी भिष्या-वदप अधिकारने नाश करवामां सूर्य समान छे, पछु मारा पिताछनी आज्ञा छती तेथी ते में सांभणी नहि. छतां अजसुतां थोडी धरुं जे वाणी काने पडी गछ तेनाथी आजे छुं छवते रहो छुं, आपे भने आमांथी जयाव्ये छे तो छवे भने नरकमांथी पछु जयावो. "त्यारे भगवान महावीरस्वामीं धरुं भीसां वचनेथी उत्तर आये;" हे भव्य छव ! आ अपार अने पारावार संसारमां सगांसंधी सौ स्वार्थने साधवावाणां छे; कोछ कोछना काममां आवतुं नथी. जे तुं धर्मकार्य करीश तो ज सुधी यछश. साथे साथे पांय महाव्रत पाणीश तो कर्मक्षय यतां मोक्षने पाभीश." भगवानने आवो उपदेश सांभणीने रोहिण्य थारे प्रतिबोध पाभीने भगवानने कहुं : "हे भगवान ! भने आरिद्रपी रत्न अपावो." अनां आवां विनयी वचने सांभणीने तेने दीक्षा आपी अने रोहिण्य थारे पोताना कुटुंभने प्रतिबोध आपीने दीक्षा लेवरावी.

कोई कोई प्रतोभां अयुं लभ्युं अे के—ज्यारे अभयकुमारनी दृगाईमां रोहिण्येय चोर न सपडयो त्यारे अभयकुमारे श्रेष्ठिकराजने कडीने तेने मुक्त कराव्यो अने कहुं के अपराध विना आने मारयो ते योग्य नथी. चोरे विचार कर्यो के—हुं श्री वीरप्रभुनां वचनो सांभर्गाने न एवतो रक्षो छुं तो पछी हुं तेमने वदत करवा जडिं. भगवाने तेने धर्मो-पदेश कर्यो. तेथी प्रतिबोध पाभीने तेजे दीक्षा लेवानुं मन करी भगवानने प्रार्थना करी के मारे दीक्षा लेवी अे, पणु ते पडेतां मारे श्रेष्ठिक-राजने थोडी वात कडेवी अे ते पछी आवीने दीक्षा लक्ष अेयुं भग-वानने कडीने ते श्रेष्ठिक राज पासे आन्थो अने ज्योयो : 'हे राज, रोहिण्येय चोर जेने कडे अे ते हुं न छुं '

[हिन्दी] श्री महावीर स्वामीजी के वचनों से मैं अभयकुमार की अकल से टगा नहीं गया। अब मैं श्री महावीर स्वामीजी के पास दीक्षा लूंगा स आपके प्रधान पुरुषों को मेरे साथ भेजो मैं सारा द्रव्य बता दूंगा। राजा ने अभयकुमार को भेजा। चोर ने सारा धन बता दिया। राजा ने जिन २ का धन था उन उन को वापिस सौंप दिया। चोरने अपने कुटुम्ब को प्रतिबोध दिया और वह परिवार सहित श्री वर्धमान स्वामीजी के पास गया और वहाँ उसने सपरिवार दीक्षा ली। इसका उत्सव श्रेष्ठिक राजा ने किया। रोहिण्येय ने दीक्षा के पश्चात् खूब जप और तप किया और समाधि से अनमन करके सुगति में प्राप्त हुआ।

अरे भव्यो ! इस तरह भगवान की वाणी हैं, जिसं मुत्तने से अनेक भव्य जीवों का निस्तार हो गया हैं। देखो रोहिण्येय चोर ने विना भाव से भगवान का उपदेश सुना तो भी अच्छी गति को प्राप्त हुआ।

कहा भी हैं कि—

मिथ्यामत नासवे को ज्ञान के प्रकास वे को, अपापर भासवे को भानसी बखानी हैं।
छद्मो द्रव्य जानवे को बंध विधि भानवे को, प्रापापर ठानवे को परम प्रमानी हैं।
अनुभो बताय वे को जीव के जतायवे को, काहु न सताय वे को भव्य उर आनी हैं।
जहां तहां तारवे को पार के उतारवे को, सुख विस्तारवे को यहै जिन वानी हैं ॥१॥

[कवित्त ३१ सो]

इस प्रकार की श्री तीर्थकर भगवान की वाणी है। इसलिए पर्युषण महा पर्व आने पर भगवान की वाणी अवश्य श्रवण करना चाहिये। जिससे इस भव में आत्मा का अल्याण हो जाय।

इति द्वितीय दिवसे द्वितीय-व्याख्यानम्]

[१०] महावीरस्वामीनां वचनो मे सांभृत्यां तथी अभय-कुमारनी जलभां इसाये नही। उवे हुं महावीरस्वामीनी पासे दीक्षा लेवानो छुं तथी आपना अधिकारीआने मारी साथे मोकलो, हुं पधुं धन अतावी दृष्टि। रात्रये अभयकुमारने मोकल्या। चारे तेमने पधुं धन अतावी दीधुं, रात्रये जेनुं जेनुं धन हुतुं ते सौ सौने सोंपी दीधुं, चारे पोताना कुट्टुअने प्रतिपेध आयेअने पोते परिवार सहित महा-वीरस्वामीनी पासे गयेअने सपरिवार दीक्षा ब्रह्मणु करी, तेनो उत्सव श्रेष्ठिकरात्रये छिन्नये। रोहिण्ये दीक्षा लीधा पछी पूज जप अने तप कर्था अने समाधिपूर्वक अनशन करीने सारी गतिने पाभ्ये।

हे भव्य छवो ! आरी भगवाननी वाणी सांभलीने अनेक छवोनुं कल्याणु थर्छ गयुं छे, जनुओ, रोहिण्ये चारे भाव विना पणु भगवाननां वचनो सांभृत्यां छतां पणु ते सारी गतिने पाभ्ये।

कहुं छे के—

मिथ्यामत नासवे को, ज्ञानके प्रकासवे को आपापर भासवे को भानसी बखानी है।
छहो द्रव्य जानवे को, बंधविधि भानवे को आपापर टानवे को परम प्रमानी है ॥
अनुभो वतायवे को, जीवके जतायवे को काहु न सतायवे को मव्य उर आनी है।
जहां तहां तारवे को, पारके उतारवे को सुखके विस्तारवे को यही जिनवानी है ॥

[कवित ३९ सो]

आरी रीतनी श्री तीर्थकर भगवाननी वाणी छे, ओरला माटे पर्युषणु महापर्व आवे तयारे भगवाननी वाणी अवश्य श्रवणु करवी जेधये; जेधी अवमां आत्मानुं कल्याणु थर्छ नय.

[आ प्रभाणे पील द्विसे पीलुं व्याख्यान पूरुं थयुं.]

तृतीय व्याख्यान-प्रारम्भ

[हिन्दी] पर्युषण पर्व के अनेक भवों को नष्ट करे ऐसी भावना करनी चाहिये । अहो ! यह चतुर्गति रूप विकराल संसार असार है । इस संसार में स्वजन, सम्पत्ति, ऋद्धिवृद्धि; यह सब अनित्य है, देखो ! भावना भावते हुए भी छः खण्ड का स्वामी भरत चक्रवर्ती सुखी हुआ । जिसका कथानक कहते हैं:-

इस जम्बूद्वीप के दक्षिणार्ध में भरत खण्ड में अयोध्या नाम की एक नगरी थी । उसमें राजा भरत चक्रवर्ती राज्य करता था । उसके समीप में चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख घोड़े, चौरासी लाख रथ, और छियानवे करोड़ पैदल सैनिकों की फौज थी । नवनिधान, चौदह रत्न थे । बत्तीस हजार मुकुट बद्ध राजा उनकी सेवामें थे । छियानवे करोड़ ग्रामों का वह मालिक था । उसके एक लाख बानवे हजार रानियां थी । उनके साथ वह आनन्द विलास किया करता था । इस तरह अनेक ऋद्धियों से सम्पन्न वह राजा राज्य का परिपालन करता था । इसी तरह राज्य चलाते उसे ८३ लाख वर्ष व्यतीत हो गये । एक पूर्व सित्तर लाख करोड़ वर्ष और छप्पन करोड़ वर्ष मिलानें से होता है । इतने पूर्वतक उसके स्वास्थ्य में जरा सी भी हानि नहीं हुई । मिर दर्द तक नहीं हुआ । एक दिन वह श्री भरत चक्रवर्ती स्नान मञ्जन कर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हो अपने आरीसा भवन में गया । आरीसा भवन काच का बना विशाल महल था । इस महल में ५०० धनुष माप तक लम्बा चौड़ा और रत्नों से सज्जित एक काच था उस दर्पण में राजाने अपने स्वरूप को देखा । उसे देखकर वह परमानन्द को प्राप्त हुआ । शरीर की शोभा निहारते निहारते उसकी दृष्टि अपनी हाथों की अंगुलियों पर पड़ी । वहां उपनें देखा कि सबसे छोटी कनिष्ठिका अंगुलि में एक मुद्रिका नहीं है, बाकी सब अंगुलियां मुद्रिकाओं से सुसज्जित हैं । अतः यह कष्ठिनिका अंगुली असुन्दर लग रही है । तब भरतजीने विचार किया अरे ! यह सब शरीर की शोभा आभूषणों पर आश्रित है ।

श्रीशु' व्याख्यान :-

[शु०] पर्युषण पर्व आवे तयारे अनेक भवे नष्ट थाय ऐवी भावना भाववी लक्ष्ये. अहो, आ चतुर्गति रूप विकराल संसार छे.

आ संसारमां स्वजन, संपत्ति, रिद्धि, सिद्धि, आ ज्युं अनित्य छे. जुम्मे, भावना भावतां भावतां छे अउने स्वामी भरत चक्रवर्ती सुभी थये. जेनुं कथानक नीचे मुज्ज छे :-

आ ज्युद्धीपना दक्षिणभागमां भरतअंडमां अयोध्या नामे अक नगरी छती, तेमां राज् भरत चक्रवर्ती राज्य करता छता. तेनी पासे चौराशी लाख छथी, चौराशी लाख घोडा, चौराशी लाख रथ, अने छत्तु करोड सैनिकोनी केव छती. नवनिधान चौह रत्नो छतां. अतीस छत्तर मुकुटधारी राज्मे अनी सेवामां छतां. छत्तुं करोड गामेनो ते भासिक छतो. तेने अक लाख पाखु छत्तर राज्मे छती. तेनी साथे ते आनंद-विकास कर्मा करतो छतो. आनी रीते अनेक रिद्धि सिद्धिवाणो ते राज् राज्यनुं परिपालन करतो छतो. आ प्रमाणे राज्य सलावतां सलावतां चाशी लाख पूर्व व्यतीत थछ गयां. अक पूर्व सित्तेर लाख करोड वर्ष अने छप्पन करोड वर्ष भणीने थाय छे. आठलां वर्षेमां तेना स्वास्थ्यमां जरा पखु छानि थछ नछीं. माथुं पखु दुःखवा आव्युं नछीं. अक दिवस ते ज भरत चक्रवर्ती रत्नानादिथी परवारी वस्त्रा-भूषणोथी सज्ज थछ पोताना अरीसाभवनमां गयो. अरीसाभवन कायने अनेलो विशाण मडेल छतो. ते मडेलमां ५०० धनुष्य भापनो लाण्पा-पडोणो अने रत्ने जडेलो अक अरीसो छतो. ते अरीसामां राज्मे पोतानुं स्वर्ण जेथुं अने जेठने धणो आनंदित थये. शरीरनी शोभा जेततां जेततां तेनी दृष्टि पोताना छथनी आंगणीमे पर पडी. त्यां दृष्टि पडतां तेणे जेथुं के नानी ट्यली आंगणीमां वींटी नथी. जाकीनी जधी आंगणीमां वींटी छे. अने तेथी आ ट्यली आंगणी पराण लागे छे. त्यारे भरतछमे विचार कयो के अरे, आ आभा शरीरनी शोभा आभूषणेने लीधे ज छे.

[हिन्दी] देखें ! सारे आभूषण उतारने के बाद यह शरीर कैसा दिखता है ? ऐसा विचार कर मुकुट, कुण्डल, भुजबन्ध, हार, कड़ा, बेरखा इत्यादि सारे आभूषण उतार दिये । तब काल्पुन मास में वृक्ष की शोभा दिखाई देती है, वैसी शोभा शरीर की दिखाई दी । जल में भीजी हुई चित्रामण की दीवार की तरह शरीर दिखाई देने लगा । भरतजीने अपने शरीरका यह दंग देखकर विचार किया कि

अहो! इस असार शरीर पर जीवों को कितनी ममता है। इन जीवधारियों को अपना यह शरीर कितना प्यारा लगता है? परन्तु यह शरीर पके हुए पत्ते की तरह चंचल है, चाहे जितना शरीर पर चन्दन लगाया जाय अथवा मृगमद आदि सुगंधित द्रव्य लगाओ पर इसकी दुर्गन्धि मिट नहीं सकती। शरीर रूप खड़े के भीतर यह जीव मद्धुरा जानवर की तरह पड़ा है। मैंने इसी शरीर के लिये पृथ्वी पर ६० हजार वर्ष तक अनेक राजाओं को पराजित किये। उनसे संग्राम किये परन्तु मेरे तो एक भी काम नहि आयेगे। बाहुबली जैसे ९९ मेरे छोटे भाइयों को धन्य है, जिन्होंने संसार के जाल से अपने को विमुक्त करके दीक्षा स्वीकार की।

[गु०] जेठं, आ अथा आलूपशो उतारी नाभवाथी शरीरनी शोभा केवी लागे छे? अशो विचार करीने मुगट, कुंडल, आभुअंध, छार, कडां, बिरभा वगेरे अथां आलूपशो अक पछी अक उतारी नाभ्यां. तयारें झगल्य मासमां पृक्षनी शोभा जेवी देभाय छे तेवी शरीरनी शोभा देभावा लागी. भरतछये पोताना शरीरनी आ स्थिति जेठने विचार कर्यो के अरे, आ असार शरीर उपर एवोनी केटली ममता छे? एव-धारीआने पोतानुं शरीर केटलुं वडालुं लागे छे? परंतु आ शरीर पाकेला पांढडा जेवुं अंचल छे. आ शरीर पर गमे तेटलुं चंदन लगा-उवामां आवे अथवा कस्तुरी वगेरे सुगंधित द्रव्यो लगाउवामां आवे छतां तेनी दुर्गंध मटती नथी. शरीरइपी पिंजरानी अंदर आ एव भरवा पडेला जनवरनी जेम पड्यो छे. में आज शरीर माटे पृथ्वी उपर साठ हजार वर्ष सुधी अनेक राज्याने पराजित कर्या. तेमनी साथे लडाछ्या करी, पलु मारा तो काममां अमानो अक पलु न आच्यो. माहुअली जेवा मारा नव्यालुं नाना लाछ्याने धन्य छे. जेमछो संसारनी जणमांथी पोताने मुक्त करीने दीक्षा अलुल्य करी.

[हिन्दी] उन लोगों ने अपने कर्मों का क्षय किया और अक्षय सुख प्राप्त किया। मैं अभी तक इस मोहजाल में फंसा हुआ हूँ। यह राजलक्ष्मी, यह युवावस्था, वे सब चंचल और अस्थिर हैं। पिता-माता, स्त्री, भाई, बहिन, पुत्र-पुत्री, धन, हाथी, घोड़े, रथ, पैदल और सेवक आदि सभी भवरूप रूप में पड़े हुए को उगारने में समर्थ नहीं होंगे। सब अपने अपने स्वार्थ के साधक हैं। अरे! मैं

हीनपुण्य हुं देखो मेरे पिताजी श्री ऋषभदेव स्वामिने संसार के सब जन्तुओं को तार दिया, परन्तु उन्होंने मुझे पापी समझकर मेरा उद्धार नहीं किया। परन्तु ऋषभदेवस्वामी तो रागद्वेष रहित हैं, उनके लिये सब जीवों पर समान भाव है। ये स्वजन-सम्बन्धी वर्ग कोई भी मेरे नहीं हैं, मेरी आत्मा स्फटिक रत्न के समान निर्मल है। दर्शनादि गुण युक्त है, परपुद्गल से भिन्न हैं, आर्त रौद्र ध्यान से द्रोहादि करने से यह आत्मा पाप कर्म युक्त हो कर भवभ्रमण करता है। धर्मध्यान से यह आत्मा पापकर्म रहित होता है। अरे चेतन ! तू किसी का नहीं, तेरा कोई भी नहीं, निष्केवल बन कर तू अपने गुणों में रमण कर जिससे तेरा आत्मा का कल्याण हो। इस तरह से अनित्य भावना (भाते भाते) भावते भावते शुक्लध्यान के दूसरा चरण पर चेतन की परिणति चढ़ी। दशतः योगों की निश्चलता हो गई। क्षपक श्रेणी पर चढ़े और तेरहवें गुणस्थान पर चढ़ते ही केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। तब तीनों लोकों में रहे हुए सारे पदार्थ सम्पूर्ण रूप से दिखने लगे। अनन्तर श्री भरत ऋषि-जीको सौवर्मेन्द्र ने आकर ओषा और मुद्रपत्ति दी। जिन्हें लेकर उन्होंने दीक्षा स्वीकार की। देवताओं ने दीक्षा एवं केवलज्ञान का उत्सव किया। अनन्तर भरतजी महाराजने ग्राम ग्राम में विहार किया और अनेक भद्र प्राणियों को प्रतिबोध दे कर दीक्षा दी।

[गु०] अ सौम्ये पीतान्ना कर्मोना स्य कथो अने अक्षय सुभ मेणन्युं. हुं ६७ आ मोहल्लणमां इसायेसो छुं. आ सान्यलक्ष्मी, आ युवावस्था. अंध अंधज अने अस्थिर छे. पिता, माता, स्त्री, भाऊ, भलेन, पुत्र-पुत्री, धन, दासी, घोडा, रथ, सैनिको अने सेवको कोर्ध भवर्षी कुपमां पडेला अने उगारवा समर्थ नथी. सौ पीत-पीताना स्वार्थने साधवावाजा छे. अरे, हुं हीनपुण्य छुं. ज्ञुथो, मारा पिता ऋषभदेव स्वामीये संसारना अथा लोने तायां पसु तेमछे अने पापी समञ्जने मारो उद्धार न कथो, परंतु ऋषभदेवस्वामी तो रागद्वेष रहित छे. तेने तो अथा लोने उपर समान भाव छे. आ स्वजन संभ-धीयो कोर्ध मारा नथी, मारो आत्मा स्फटिक रत्ननी जेयो निर्मल छे, दर्शनादि गुणयुक्त छे, पर-पुद्गलथी भिन्न छे. आर्त रौद्र-ध्यानथी परद्रोह वगैरे करवाथी आ आत्मा पापकर्म युक्त थकने भवभ्रमण करे छे. धर्मध्यानथी आ आत्मा पापकर्म रहित थाय छे. अरे चेतन ! तू कोर्धना नथी. तारां कोर्धपसु नथी. निष्कलंक अनीने तूं तारा गुणोभ

रमणु कर जेथी तारा आत्मानुं कल्याणु थाय. आ प्रभाषेनी अनित्य भावना भावतां भावतां शुक्लध्यानना पील अरणु उपर येतननी परिशुति अडी, अने देशथी येगनी निश्चलता थल गठ. सपेकश्रेष्ठी उपर यडया अने तेरभा गुणस्थान पर यदतां जे केवणज्ञान प्राप्त थयुं. त्यारे त्रेषु लोकभां रहैला अथा पदार्थी संपूर्ण स्वर्णे तेभने देभावा लाग्या. पछी भरतऋषिने सौधर्मेन्द्रे आवीने आधा अने मुद्रपति आपी; जे लधने तेमणु दीक्षाने स्वीकार कर्था. देवताओंये दीक्षा अने केवणज्ञानने उत्सव कर्था, पछी भरतल महाराजे गामोगाम विहार कर्था अने अनेक अव्य प्राणीओंने प्रतिष्ठा अपीने दीक्षा अडणु करावी.

[हिन्दी] अनुक्रम से वे अष्टापद पर्वत पर साधुओं के परिवार सहित एक मास तक अनशन कर श्रवण नक्षत्र आते ही मोक्ष को प्राप्त हुए। वे सिद्ध बुद्ध हुए, समस्त कर्मों से रहित हुए, शाश्वत सुख को प्राप्त हुए, जन्म-मरण से रहित हुए। अनन्तर श्री भरतजी महाराज का निर्वाणोत्सव देवताओं ने किया। उन्होंने अनशन के स्थान पर मन्दिर बनाया। तथा भरतजी के साथ साधुओं ने भी अनशन किया था उनका एक स्तूप बनाया।

श्री भरतजी महाराज सत्तर लाख (७७) पूर्व तक तो कुमारपने में रहे, एक हजार वर्ष मंडलिक राजापने में रहें, उन्होंने एक हजार वर्ष तक कम छः लाख पूर्व तक चक्रवर्ती पदवी भोगी। एक लाख पूर्व तक वे केवलज्ञानीपने में रहे, उनकी सारी आयु ८४ चौरासी लाख पूर्व की हुई, जिसे उन्होंने बिना वाधा के भोगा।

इस का मतलब यह है कि हे भक्त्यो! भरत चक्रवर्ती की कथा सुनकर जो आत्मा में वैराग्यभाव लावेगा और भावना भावेगा वह अनन्त अविचल सुख को प्राप्त करेगा।

[इति श्री भावना ऊपर श्री भरत चक्रवर्ती का दृष्टान्त समाप्त हुआ]

[गु०] अनुक्रमे तेषां अष्टापद पर्वत उपर साधुओंना परिवार साथे अेक मास सुधी अनशन व्रत करीने श्रवणु नक्षत्र आवतां जे मोक्ष पदने पाभ्या. तेषां सिद्ध-बुद्ध थया, समस्त कर्मोंथी रहित थया, शाश्वत सुअने प्राप्त थया अने जन्म-मरणुथी रहित थया. त्यार पछी भरतल

महाराजनेो निवर्षिणोत्सव देवताओंके कर्षो. तेमना अनशनना स्थान उपर मंदिर बनाव्युं तथा भरतजीनी साथे साधुओंके पास जेभणुं अनशन कर्षुं हुतुं तेमनेो अक स्तुप बनाओ.

श्री भरतजी महाराज सत्थोतेर लाभ पूर्व सुधी कुमार तरीके रखा, अक उन्नर वर्ष सुधी मंडलिक राज तरीके रखा अने छ लाभ पूर्वभां अक उन्नर वर्ष ओछां रखां त्यां सुधी अकवतीं पह भोगव्युं, अक लाभ पूर्व सुधी ते देवजज्ञानीपणुमां रखा. तेमनुं आयुअ ८४ लाभ पूर्वनुं थयुं जे तेभणुं कशीं पणुं मुशकेली विना भोगव्युं.

आनेो अर्थ ओवेो छे के डे भव्यो! श्री भरत अकवतींनी कथा सांभजीने जे आत्माभां वैराग्यभाव प्राक्शे अने भावना भावशे ते अनंत अवियल सुभने प्राप्त करशे.

[धृति श्री भावना उपरनुं भरत अकवतींनुं दृष्टांत समाप्त]

[सं०] पुनरत्र पर्वणि यत्कर्तव्यं तदाह—तपोविधानादि—यथाशक्ति तपसि यत्नो विधेयः । चतुर्थष्टाष्टमादितपः कायेमित्यर्थः । तत्र यदि कश्चित् स्नेहवशात् तन्निषेधं करोति तथापि तल्लोपबुद्धिर्न धार्या, श्री भरतपुत्रधर्मपशोनुपवत् तत्कथा चैयम् :—

[हिन्दी] फिर इस पर्युषण पर्व के आने पर जो कर्तव्य है वह कहते हैं:— श्रावक मन में भावना भावे कि वर्ष के ३६० दिन होते हैं, उसमें मैंने पोसह प्रतिक्रमण आदि नहीं किये, भगवान की वाणी नहीं सुनी, शीलव्रत का पालन नहीं किया, यथाशक्ति छद्म अद्भुत आदि तप करने का उद्यम नहीं किया । अगर कोई स्नेहपूर्वक इन तपों में रुकने को कहता भी है तो भी उसे लोप करने की बुद्धि न करे । जैसे श्री भरतजी के पुत्र सूर्यवश राजा ने प्राणों से भी प्यारी उर्वशी ने तप करनेका मना किया तो भी तप अनुष्ठान नहीं छोड़ा । उसी तरह श्रावको का भी चाहिये कि वे तप आदि का त्याग न करें ।

[सु०] हुवे आ पर्युषण पर्व आवे त्यारे सौनुं शुं कर्तव्य छे ते कहुं शुं :— श्रावक मनभां भावना भावे के वर्षना ३६० दिवसेो होय छे. ओभां में पोसह, प्रतिक्रमण वगैरे नहीं कथां. भगवाननी वाणीं नहीं

सांभली, शीघ्रप्रतनुं पावन नथी कथुं, यथाशक्ति छठ अहम वगेरे तप करवानो उधम नथी कथो. अगर कोरु स्नेहपूर्वक आ तप नडीं करवानुं कहे तो पशु तेमांथा छठवानी जुद्धि न करवी जेहमे. जेम श्री भरतछना पुत्र सूर्ययशा राजने पोताना प्राणुधी पशु प्यारी उर्वशीअये तप करवानी ना पाडीं हती छतां पशु तेमजे तप-अनुष्ठान न छेउयां तेम श्रावकोअये पशु तप वगेरेनो त्याग न करयो जेहमे.

श्री भरत पुत्र सूर्ययशा की कथा —

अयोध्यायां नगर्यां सूर्ययशा नृप आसीत्, स च त्रिसंखडभूमिस्वामी नीतिवित् अखण्डशासनो दुष्टान् वैरिणः स्ववशे नीतवानिन्द्रेणोपदौकितं मुकुटं शिरसि घृतवान्, तस्य मुकुटस्यैव माहान्मवाच स नृपः सुरसेन्योऽप्यभूत्तस्य राज्ञो राधाबेधपणात् प्राप्ता कनकाविद्याधरपुत्री 'जयश्री' पट्टराज्ञी बभूव, अन्यान्यपि तस्य बहुनि कलत्राणि आसन् ।

[हिन्दी] जम्बूद्वीप के दक्षिणार्धे भारत में बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी अयोध्या नाम की नगरी थी । उसमें श्री भरत चक्रवर्ती का गद्दीवारी सूर्ययश राजा राज्य करता था । इस राजा को स्वयं इन्द्र ने ही उत्सव करके सिंहासन पर विठाया था । इन्द्र ने अत्यन्त सुन्दर देव संम्बधी मुकुट इसे दिया । जिसे मस्तक पर धारण किया और उसी मुकुट के तेज प्रताप से सूर्य जैसा तेजस्वी दिखाई देने लगा । अतः उस राजा का नाम " सूर्ययशा " पड़ा । यह राजा तीन खंड का स्वामी, सब प्रकार की नीति जानने वाला, अखंड शासन का प्रवर्तक था । राजा का राज्य निष्कंटक था । उसने अपने सभी वैरियों को वश में कर लिया था । इन्द्रदत्त मुकुट के प्रभाव से यह राजा देवताओं में पूज्य हुआ । इस राजाने राधा बेध को करके कनक विद्याधर की पुत्री " जयश्री " से विवाह किया । यही इस राजा की पट्टराणी थी । यों तो इस राजा के अन्य भी बहुत स्त्रियां थी वह उनके साथ गृहस्थजनोचित भोगों को भोगता था ।

श्री भरतपुत्र सूर्ययशानी कथा

जम्बूद्वीपना दक्षिण भागमां भरतभंडमां प्यार योजन लांणी अने नव योजन पडोणी अयोध्या नामनी अेक नगरी हती. तेमां भरत

सकवर्तनी गादी पर सूर्ययज्ञा राज् राज्य करतो હતો. તે રાજને સ્વયં ઈન્દ્રે જ ઉત્સવ કરીને ગાદી ઉપર બેસાડ્યો હતો. ઈન્દ્રે તેને દેવોને યોગ્ય અત્યંત સુંદર મુગટ પણ આપ્યો હતો. જેને તેણે મસ્તક ઉપર ધારણ કર્યો અને તે મુગટના તેજના પ્રતાપથી તે સૂર્ય જેવા તેજસ્વી દેખાવા લાગ્યો. તેથી તે રાજનું નામ 'સૂર્યયજ્ઞા' પડ્યું. આ રાજ ત્રણ ખંડનો સ્વામી, બધા પ્રકારની નીતિને જાણવાવાળો અને અખંડ શાસનનો પ્રવર્તક હતો. રાજનું રાજ્ય નિષ્કંટક હતું. તેણે તેના બધા દુશ્મનોને વશ કરી લીધા હતા. ઈન્દ્રે આપેલા મુગટના પ્રભાવથી આ રાજ દેવોમાં પણ પૂજ્ય થયો. આ રાજએ 'રાધાવેદ' કરીને કનક વિદ્યાધરની પુત્રી જયશ્રી સાથે વિવાહ કર્યો હતો. તે જ રાજની પટરાણી હતી. આમ તો રાજને બીજી ધણીયે રાણીઓ હતી અને તે તેમની સાથે ગૃહસ્થને ઉચિત ભોગો ભોગવતો હતો.

[સં૦] સ રાજા ચતુઃપર્વી વિશેષેનાષ્ટમીં ચતુર્દશીં ચ પ્રત્યાહ્યાન-પોષધાદિ-તપસા આરાધયતિ સ્મ । જીવિતાદરત્ત્વત્રોદરોડસ્ય ચેતસિ અતિવહ્લભોડસ્તિ તેનાસોં જીવિતાદપિ પર્વોણિ રક્ષતિ । અથેકદા સૌધર્મેન્દ્રઃ સુધર્માસમામાશ્રિતો જ્ઞાનાત્તન્નિદ્વચયં જ્ઞાત્વા ચમત્કૃતિં પ્રાપ ।

[હિન્દી] વહ રાજા રતને પર મી ચાર પર્વ વિશેષ કરકે આઠમ, ચૌદશ, પચ્ચ સ્વાણ, પૌષધ આદિ કો પ્રાણોં સે મી પ્રિય સમજકર આદર સે કરતા થા । આપત્તિ (કષ્ટ) સમય મેં ઉસ મેં ચૂક નહીં કરતા થા । ઉસકે ચિત્ત મેં યહ ધારણા દ્દ થી । કિ મુજ્જે તપસ્યાદિ ધર્મ કરને હૈં । ઇકબાર દેવલોક કે સ્વામી 'સૌધર્મેન્દ્ર' અપની સુધર્માસમા મેં શક સિંહાસન પર બૈઠા થા । વહ અવધિજ્ઞાન સે "પાંચસૌ હ્લબીસ યોજન ઔર છ કલા પ્રમાણવાલે" ભરતક્ષેત્ર કો દેખ રહા હૈં ઉસેં અયોધ્યા નગરી મેં 'સૂર્યયજ્ઞ' રાજા કો ધર્મ ક્રિયા કરને મેં દક્ષ દેખકર અત્યંત આશ્ચર્ય હુઆ । ઉસને આશ્ચર્યચક્રિત હો અપને શિર કો હિલાયા ।

[યુ૦] આટલું હોવા છતાં તે રાજ ચાર પર્વ ખાસ કરીને આઠમ, ચૌદશ, પચ્ચમાણ, પૌષધ વગેરેને પ્રાણથી પણ પ્રિય સમજને

आदरणी पाणतो હતો. મુશ્કેલીના વખતમાં પણ તેમાં ભૂલ આવવા દેતો નહોતો તેના મનમાં દૃઢ ધારણા હતી કે મારે તપ વગેરે ધર્મધ્યાન કરવા છે.

એકવાર દેવલોકના સ્વામી “સૌંદર્ભેન્દ્ર” પોતાની સુધર્મા સભામાં શક સિંહસન ઉપર બેઠા હતા. તે અવધિજ્ઞાનથી ‘પાંચસો છવીસ યોજના અને ૬ કલા પ્રમાણવાળાં’ ભરતક્ષેત્રને બેઠી રહ્યા છે. ત્યાં તેમને અયોધ્યા નગરીમાં ‘સૂર્યવંશ’ રાજાને ધર્મક્રિયા કરવામાં દક્ષ બેઠને અત્યંત આશ્ચર્ય થયું અને એ આશ્ચર્યથી ચક્રિત થઈને તેણે પોતાનું માથું હલાવ્યું.

[સં०] તદોર્વશી દેવી વિશ્વવશીકરણસામર્થ્યે વિભ્રાણા અકસ્માત્સુરેન્દ્રશિરઃ—
કમ્પં દૃષ્ટવા પ્રોવાચ, “સ્વામિન્ ! સામ્પ્રતં શિરઃકમ્પનકારણં તુ ન કિમપિ દૃષ્યતે તતઃ કિં નિમિત્તં તુષ્ટેન નાથેન શિરઃકમ્પઃ કૃતસ્તદા સુરેન્દ્ર ઉવાચ “મયાધુના જ્ઞાનદૃષ્ટ્યા ભરતક્ષેત્રે ઋષભસ્વામિનઃ પૌત્રો ભરતચક્રિણઃ પુત્રોઽયોધ્યાધિપઃ સૂર્યવંશ નામ રાજા સાત્ત્વિકાનાં શિરોમણિદૃષ્ટઃ ।

[હિન્દી] તથા ઉર્વશી દેવી જો પૂરે સંસાર કો વશીકરણ કરને મેં સમર્થ થી અકસ્માત્ રાજા કો આશ્ચર્ય સે શિર કમ્પિત કરતે દેસકર બોલી, “હે સ્વામી ! અમી ૨ કોઈ એસા ગીત યા નાટક આદિ તો હુઆ નહીં ફિર આપને યહ પ્રસન્નતા-વસ્થા મેં શિર કમ્પ ક્યોં કિયા ? તથા સુરેન્દ્ર ને કહા, “અમી મેંને જ્ઞાનદૃષ્ટિ સેં ભરતક્ષેત્ર મેં શ્રી ઋષભસ્વામી કે પૌત્ર ઔર ભરત ચક્રવર્તી કે પુત્ર અયોધ્યા કે સ્વામી સૂર્યવંશ નામ કે રાજા કો સાત્ત્વિક રાજાઓં કે શીર્ષ સ્થાન પર દેસા હૈં ।

[ગુ०] ત્યારે ઉર્વશીદેવી જે સમસ્ત સંસારનું વશીકરણ કરવામાં સમર્થ હતી તે અકસ્માત્ ઇન્દ્રને આશ્ચર્યથી માથું હલાવતો બેઠને બોલી “હે સ્વામી ! હમણાં હમણાં એવું કોઈ ગીત કે નાટક થયું નથી. છતાં પ્રસન્ન થઈને આપે માથું કેમ હલાવ્યું ? ત્યારે સુરેન્દ્રે કહ્યું : ‘હમણાં મેં જ્ઞાનદૃષ્ટિથી ભરતક્ષેત્રમાં શ્રીઋષભસ્વામીના પૌત્ર અને ભરત ચક્રવર્તીના પુત્ર અયોધ્યાના સ્વામી સૂર્યવંશ નામના રાજાને યથા સાત્ત્વિક રાજાઓના અણગમી તરીકે બેસા.

[सं०] स चाष्टमी-चतुर्दशी-पर्वणोस्तपसः कृतवहुयत्नः सुरैरपि चालयितुं न शक्यते । यदि सूर्यः पूर्वदिशमतिक्रम्य पश्चिमायामभ्युदेति तथा मेरुवतिः कम्पते, समुद्रो वा मर्यादां त्यजेत्, कल्पवृक्षो वा निष्फलो भवेत्, तथाप्येष कण्ठगतैः प्राणैरपि जिनाज्ञावत् स्वकृतं निश्चयं न मुञ्चति ।

[हिन्दी] बड़े राजा आठम, चौदश, उपवासादि तप यत्नपूर्वक करता है, पोषध, प्रतिक्रमण करता है, ग्राम में ढोल बजा कर उसकी उद्घोषणा करता है धार्मिक लोगो को सूचित करता है कि आज पर्वी है अतः सभी पोषध प्रतिक्रमण आदि तप करो । इस तरह वह तपस्यापूर्वक पर्वाराधन करता है । यदि सूर्य पूर्व दिशा को छोड़कर पश्चिम दिशा में उगे और मेरु पर्वत हवा से हिलने लगे, समुद्र मर्यादा छोड़ दे कल्पवृक्ष निष्फल हो जाय तो भी तथा इसके स्वयं के प्राण कण्ठ में आ जाय तो भी यह जिनाज्ञा की तरह अपने निश्चय को नहीं छोड़ेगा । इस तरह का दृढ निश्चयी मनुष्य जन्म में होना भारी आश्चर्य है यह देखकर ही वाह वाही से मेरा धिर हिला है ।

[शु०] “ते राज्ञ आठम अने, चौदशी उपवास वगैरे तप प्रयत्न पूर्वक करे छे, पोषध-प्रतिक्रमण करे छे, ग्राममां ढोल बजावैने तेनी उद्घोषणा करे छे, अने धार्मिक लोकाने सूचवै छे के-आज पर्व छे माटे पोषध-प्रतिक्रमण वगैरे तप करे. आ रीते तपस्या साथे पर्वनुं आराधन करे छे. जे कही सूर्य पूर्व दिशाने छोडीने पश्चिम दिशांमां जगे अने मेरु पर्वत हवाथी डोलायमान थाय, समुद्र मर्यादा छोडी दे, कल्प-वृक्ष इण हेतुं अंध अर्थ नय, तेना पोताना प्राण संकटमां आवी नय, छतां पणु ते जिनाज्ञा जेवा पोताना निश्चयने छोडरी नही. आना जेवा दृढनिश्चयी मनुष्य मनुष्यलोकमां डोवो अे हु आश्चर्यानी बात छे. आ जेधने तेनुं अभिनंदन करतां मारु भाधुं छली छियुं छे. ”

[सं०] अधोर्वशीन्द्रवचः श्रुत्वा किञ्चिन्मसि विचार्य प्रत्युत्तरमुवाच हे स्वामिन् ! युक्तायुक्तज्ञत्सर्वं मनुष्येषु निश्चयं किं श्लाघसे ? यः सप्तधातुनिष्पन्नशरीरोऽन्नजीवकः स देवैरप्यचाल्य इति कः श्रद्धधाति ? मद्गानासपूरेण केषां विवेकप्रमुखा गुणा न विलयं यान्ति ? तत्र गत्वा तमप्यहं सद्यो व्रताद् भयबिद्ये ।

[हिन्दी] इन्द्र के ऐसे वचनों को सुन कर मन में कुछ विचार कर उर्वशीने उत्तर दिया, ' हे स्वामी ! योग्य-अयोग्य-ज्ञानयुक्त आपको मनुष्यों में निश्चय की क्या प्रशंसा करना योग्य है ? मानवों का सप्त धातु निर्मित शरीर अन्न पर निर्भर है, अतः यह इतना दृढ निश्चयी नहीं हो सकता । मेरे गीतों के रस से देवता आदि प्रमुख लोग भी अपनी सुधसुध खो बैठते हैं । वे विचलित हो जाते हैं, उनके गुण नष्ट हो जाते हैं । फिर इसकी क्या गिनती ? अतः मैं वहां जाकर शीघ्र ही उस का व्रत भंग करूंगी ।

[शु०] मन्द्रना आवां वयना सांभजानि मनमां कांछिकि विचार करिने उर्वशीये व्याख्यान व्याख्या : ' हे स्वामी, योग्य-अयोग्यना ज्ञानयुक्त आपने मनुष्यना निश्चयनी प्रशंसा करवी शुं योग्य छे ? माणुसैतुं सप्तधातुं निर्मित शरीर अन्न उपर नभे छे, तेथी ते आटलो दृढनिश्चयी पनी शकें नही, मारां गीता सांभजतां देवता वगेरे मुख्य मुख्य लोकें पणु गीतानी सुधसुध ओछं ओछे छे, तेथी विचलित थरं नय छे, तेमना गुणो नष्ट थछं नय छे. तो पछी आनी तो शुं गणुतरी ? माटे हुं त्यां नछने शीघ्र तेना व्रतभंग करावांश. "

[सं०] इति प्रतिज्ञां विधाय रम्भया सहिता उर्वशी हस्तेन वीणां दधाना स्वर्गाद्भूमिमवतरति स्म । अयोध्यानिकटोद्याने च श्रीऋषभस्वामिनश्चेत्ये मोहोत्पादकमत्यद्भुतं रूपं कृत्वा गायतिस्म । तद्गानमोहिताः पक्षिमृगसर्पाश्चा अपि आलेख्यलिखिता इव पाषाणघटिता इव वा निश्चलनेव्रस्तस्थुः ॥

[हिन्दी] ऐसी प्रतिज्ञा करके उर्वशी देवी रम्भा नाम की अप्सरा के साथ हाथ में वीणा ले कर स्वर्ग से भूमि पर आई ! अयोध्या के निकट बगीचे में श्री ऋषभदेव स्वामी के मन्दिर में मोह को उत्पन्न करनेवाले अत्यन्त मनोहरी रूप धारण कर मधुर स्वर से गीत गाने लगी । उस के गीत राग से मोहित पक्षी, हिरण, सर्प आदि जन्तु भी चित्र लिखित से रह गये । अथवा पत्थर की मूर्तियों की तरह अपलक नेत्रवाले हो गये । वे सब दत्त चित्र हो कर गीत सुनने में मस्त हो गये ।

[शु०] आवी प्रतिज्ञा करिने उर्वशीदेवी रंभा नामनी अप्सरानी साथे हाथमां वीणा लछने स्वर्गभांथी पृथ्वी पर आवी, अने अयोध्यानी

पासेना अगीत्यामां श्री ऋषभदेव स्वामीना मंदिरमां मोड उत्पन्न
करवावाणुं अत्यंत मनोहारी रूप धारण करीने मधुर स्वरथी गावा लागी.
तेना गीतरागथी मोहित थयेकां पशु, पक्षी, उरणु, सर्प वगैरे अथ-
वंतुंये। पशु चित्रमां चीतयां होय तेकां स्थिर थछ गयां. अने पत्थरनी
भूर्तिनी जेभ बरा पशु लाव्या पगर अपत्रक नेत्राणां थछ ध्यानपूर्वक
तेनुं गीत सांभणवामां भरत थछ गयां.

[सं०] इतश्च श्री सूर्ययशा अश्वं वाहयित्वा पश्चाद्बलमानः पथि तयोरतिमधुर-
गानध्वनीन् श्रुत्वाव । तदा वाजिगजपत्तयः पदमपि यानेऽसमर्था अभूवन्, एतत्स्वरूपं
दृष्ट्वा नृपोऽमान्यं प्रति सादरमुवाच, “ भो मन्त्रिन् ! संसारे नादसमः सुखदः कोऽपि
न दृश्यते, यद्गशात्पशवोऽप्यमी ईदृग्मोहिताः सन्ति । नादेन देव-दानव-नृप-कामि-
न्यादयः सर्वेऽपि प्रायो वशीभवन्ति । ततो वयमपि ऋषभस्वामिनं नमस्कृतुं तत्र चैत्ये
यामस्तत्र गता एतद्गोपस्वादमपि लप्स्यामहे ।

[हिन्दी] इधर से श्री सूर्ययशा राजा भी घोड़े के खिलाकर वापस लौट रहा
था तो रास्ते में उसने भी कानों को मीठी लगनेवाली व हृदय में आनन्द उल्लास
उत्पन्न करनेवाली गीत की ध्वनि सुनी । इस गान की ध्वनि सुनकर उस समय
राजा के घोड़े, हाथी और मनुष्य सब एक पांव भी आगे चलने में समर्थ नहीं
हुए । ऐसा देखकर राजाने आदरपूर्वक अपने प्रधान से कहा—“ इस संसार में गीत
के समान सुख देनेवाली कोई वस्तु नहीं दिखाई देती, जिसके वश पशु भी इस
तरह से मोहित हो जाते हैं । गीत से देवता, दानव, राजा व औरतें तक भी प्रायः
वश में हो जाती हैं । अब अपन भी श्री ऋषभदेवस्वामी के चैत्य का वन्दन कर
इस गीत के रस का स्वाद भी लें ।

[गु०] आ पाणु सूर्ययशा राज पशु घोडा जेवनीने पाछ करता
हता. तेमणु पशु रस्तामां कानने मीठी लागती अने हृदयमां उदसास
उत्पन्न करवावाणी अ. गीतध्वनी सांभणी. आ गीतने ध्वनि सांभणीने
राजना घोडा, हाथी अने साधेना माणुसे पशु ओक पगे थछ गया अने
आगण उगळुं बरवामां असमर्थ थछ गया. आवुं जेठने राजने आदरपूर्वक
पाताना प्रधानने कह्युं : ‘ आ संसारमां गीतना जेवी सुभ आपवावाणी

भील कोई वस्तु नथी लागनी के जेने वश थछने पशुओ पशु
आ प्रभाषे मोहित थछ जय छे. गीतधी देवता, दानव राज् अने
स्त्रीओ पशु मोटे भागे वश थछ जय छे. आपणे ऋषभदेव स्वाभीना
चैत्यनुं वदन् करीने गीतना रसनो आस्वाद लछ्ये. '

[सं०] इत्थमामन्त्र्य तद्गानमोहितो भूपालो मन्त्रिणा सह जिनचैत्यांतर्जगाम ।
तत्र हस्तयोर्वीणां विभ्रत्यू गीतध्वनि कुर्वन्त्यौ कामभार्यैव दिव्यसौन्दर्ये कुमारिके
विलोक्य स्नेहचक्षुर्निर्मुक्तैः कामवाणैर्हृदि विद्धो नृपश्चिन्तयामास । एतयोरिदमत्यद्भुत-
रूपं कस्य पुण्यवतो भोगाय भविष्यति ? ततो राजा मुहुर्मुहुस्तयोश्चक्षुषी क्षिपन् श्रीपुगा-
दीशितुः पादौ प्रणम्य चैत्याभिः सृत्य बहिः प्रदेशे उपविष्टस्तयोः कुलदिकं ज्ञातुं
मन्त्रिणे आदिष्टवान् । मन्त्र्यपि नृपादेशात्तयोः समीपं गत्वा सुधामधुरया वाचा संभाष्य
इत्थमालपत् । हे कन्यके ! युवां के ? युवयोः पतिः कः ? किमर्थमिहागमनं चैत्ये ?
तत्सर्वं वदत । अथ मन्त्रिवचः श्रुत्वा तयोरेका उवाच आवां मणिचूडविद्याधरराजस्य
पुत्र्यौ, आवाल्यात् कलास्वेवादरवत्यौ अभूतां, क्रमेण यौवनं प्राप्ते वीक्ष्यास्मत्पिता वर-
चिन्तां कर्तुं लभः । आवां स्वसदृशं पतिमलभमाने स्थाने २ अहंचैत्यानां नमस्याभि-
निजं जन्म सकलं कुर्वहे ।

[हिन्दी] ऐसी मन्त्रणा करके उनके गान से मोहित राजा, मन्त्री के साथ
जिनचैत्य के भीतर गया । वहां सुन्दरता में कामदेव की पत्नियों के समान दिव्य
सौन्दर्य वाली, हाथ में वीणा लेकर सरस रागयुक्त गायी हुई ऐसी दो कुमारी कन्याओं
को देखा । उन्हें देखते ही उनके स्नेहयुक्त फेंके गये काम वाणों से विद्ध हृदय-
वाला राजा विचार करने लगा । इनका यह अत्यन्त अद्भुत और सुन्दररूप किस
पुण्यवान् प्राणी के भोग योग्य है ? अब राजा बारम्बार अपनी आंखों से उनके रूपको
देखता हुआ भगवान के चरणों की वन्दना करके चैत्य से बाहर आया । वहां एक
स्थान पर बैठकर इन कुमारिका के कुल आदि को जानने के लिये मन्त्री को आज्ञा दी ।

प्रधान भी राजा की आज्ञा से उनके पास गया । वहां उसने उनसे मधुर-
वाणी से इस प्रकार प्रश्न किये । हे कन्याओं ! तुम कौन हो ? तुम्हारे पति कौन
हैं ? किस लिये तुम यहां चैत्य में आई हो । यह सब मुझे बताओ । इसके बाद
मन्त्री के वचन सुनकर उन दोनों में से एकने कहा । हम मणिचूड विद्याधरराज की

पुत्रियां हैं, बचपन से ही सगीत एवं कला में आदरवाली हैं, क्रम से हम जवानी को प्राप्त हो गई, यह देखकर हमारे पितानें हमारे योग्य वर की खोज की, किन्तु वे असफल रहे। हम भी अपने योग्य पति के अभाव में स्थान स्थान पर अर्हत् चैत्र्यों में जाकर भगवान् को वन्दन कर अपना जन्म सफल कर रही हैं।

[सु०] आधी मंत्रणा करीने उर्वशीना गान्धी मोहित थयेला राज्ञ पोताना मंत्री साथे मंदिरमां गयो. त्यां जर्धने सुंदरतामां कामदेवनी पत्नींओ जे सौंदर्यवाणी अने हाथमां वीणा लर्धने सरस रागधी गाती जे कुंवारी कन्यांओने राज्ञंओ जेधने. तेने जेधने ज तेमण्णे डेकेला स्नेहयुक्त कामण्णोथी वींवायेला हृद्यवाणो राज्ञ विचार करवा लाग्यो. आ कन्यांओनुं अत्यंत अद्भुत अने सुंदर रूप कया पुण्यशाणी प्राणीना भाग्यमां भोगववानुं लप्पुं लुशे? हुवे राज्ञ वारंवार पोतानी आंभोथी तेमना रूपने निरभतो भगवानना चरणांमां वंदन करीने मंदिरनी अहार आच्यो त्यां जेक स्थान उपर गेसीने आ कन्यांओना कुण वगेरे जण्णी लाववानी मंत्रीने आज्ञा दीधी

प्रधान पणु राज्ञनी आज्ञा मणता तेमनी पासे गयो त्यां जर्धने तेण्णे मधुर वार्त्ताथी आ प्रमाण्णे प्रश्न कर्या: ' हे कन्यांओ, तमे कोणु छे? तमारा पति कोणु छे? शा माटे तमे अडीं मंदिरमां आच्यो छे? आ अणुं मने कळो ' पळी मंत्रीनां वचनो सांभणीने जेभांथी जेक जण्णींओ कळुं: ' अमे मखियुड विद्याधरराजनी पुत्रींओ छींओ. नानपणुथी ज संगीत वगेरे कलांओमां अभने आहर छे. कामे करीने अमे युवान थयां जेठले अमारा पितांओ अमारे योग्य वरनी शोध करी पणु तेमां तेओना निष्कृण गया. आर्थी अमे अमारे योग्य पति न मणवार्थी डेकाण्णे डेकाण्णे अर्हत् भगवाननां मंदिरंओमा जर्धने भगवाननुं स्तवन करीने अमारे जन्म सार्थक करींओ छींओ.

[सं०] पुर्नमौनवो भवः क्व । इयमयोध्यापि तीर्थभृतास्ति । जतोऽत्र भरतकारिते चत्वे आदिजिनं नमस्कृतुमावयोरारागमनमभूत् । एवं कथयन्त्योस्तयोर्मन्त्री उवाच, अमुना ह्ययज्ञानपेण सह युवयोः संगमः श्रेष्ठो, यतोऽसौ ऋषभस्वामिनः पौत्रो, भरतचक्रिणः पुत्रः सर्व-कला-संपूर्णः सौम्यः सदगुणवान् बलवांश्चास्ति । तस्मान्निश्चितं ऋषभस्वामी

पुत्रयोस्तुष्टो यत् अकस्मात्सूर्ययशाः वरः प्राप्तः । मंत्रिणि एवं वदति सति ते तमूचतुः,
आवां हि स्वाधीनं पतिमेवाश्रयावहे ततोऽस्माद्यो नृपाज्ञया ते इत्यवोचत् । पुत्रयोर्वाच-
मन्यथा कुर्वन्नुपतिर्मया निषिध्यः । मंत्रिणा एवतुक्ते सति तदैव श्री-पुगादीश-समक्षं
तेषां पाणिग्रहणोत्सवः संजातः ।

[हिन्दी] फिर मानव जन्म बारम्बार मिलना कठिन है । यह अयोध्यानगरी
भी तीर्थस्वरूप है । यहां ही भरत चक्रवर्ती द्वारा वनवाये गये इस चैत्य में आदि-
जिनेश्वर को वन्दन करने हेतु हमारा आगमन हुआ है । इस तरह जब उन्होंने मंत्री
से अपना हाल कह सुनाया तब मंत्रीने कहा, आप इस सूर्ययशा राजा के साथ विवाह
कर लें तो श्रेष्ठ होगा, क्योंकि यह राजा ऋषभदेव स्वामी का पोता और भरत चक्र-
वर्ती का पुत्र है, इतना ही नहीं यह तो सभी प्रकारकी कलाओं को जाननेवाला
है और उनमें पारंगत है, यह सुन्दर है, और सद्गुणों से युक्त तथा बलवान भी है ।

अब मेरा तो बड़ निश्चय है कि आप दोनों पर श्री ऋषभदेव स्वामी प्रसन्न
हैं, अतः अकस्मान् आपको सूर्ययशा जैसा राजा वर रूप से प्राप्त हुआ है । मंत्री के
ऐसा कहने पर उन्होंने कहा—कि हम तो ऐसा पति चाहती हैं जो हमारे कथना-
नुसार चले, हमारे आधीन रहे । मंत्रीने कन्याओं के विचार राजा से कहे, और
राजाने भी कहा कि जित्त तरह ये कन्याएँ कहेंगी वैसा ही करूंगा । जब दोनों
और से परस्पर बातें ही गई तो वहां ही श्री जिनेश्वर आदिनाथ के सम्मुख ही
उनका विवाह हो गया ।

[शु०] मानवजन्म बारंवार भणयो कठणु छे आ अयोध्या नगरी
पणु तीर्थ जेवी छे, तेथी आडीं श्री भरत चक्रवर्तीअि पनावेला आ
चैत्यमां आदि जिनेश्वरनु वंदन करवा भाटे आमारुं आगमन थयुं छे.

आवी रीते ज्यारे तेभणु मंत्रिने पोतानी उकीकत कही त्यारे
मंत्रिअि कहुं : ' आप आ सूर्ययशा राजनी साथे विवाह करी ल्यो तो
धणुं सारुं थरी; धारणु के आ राज ऋषभदेव स्वामीना पौत्र भरत
चक्रवर्तीना पुत्र छे, अेटणुं न नहि पणु अे अधी कलाअोमां प्रवीणु छे
अने तेना पूरे जणुकार छे, ते सुंदर छे अने सद्गुणोधी युक्त तथा
बलवान पणु छे, भने तो लागे छे के तमारुं अने पर ऋषभदेव स्वामी

प्रसन्न छे अटले अनायासे ज तमने सुखयशा जेवे राज वरना रूपमा प्राप्त थयेस छे."

मंत्रीनुं आवुं कडेवुं सांभजीने तेभये कहुं: 'अमे तो अवे पति छच्छीअे छीअे के जे अमे कडीअे तेम करे अने अमारे आधीन रहे.'

मंत्रीअे कन्याअेनो विचार राजने कखो तयारे राजअे कपूल कहुं के जे प्रभाअे कन्याअे कडेसे तेम हुं करीश. अयारे अने आनुअेधी परस्पर वातो थछ गछ तयारे त्यांज श्री जिनेश्वर आदिनाथनी सामे ज तेमने विवाह थछ गयो.

[सं०] ततस्तयोः प्रीतिरसाकृष्टो भूपतिः संसारे तद्भोगमेव सारं मन्यमानोऽह-
निंशं ताभ्यां सह विविधान् भोगान् भुञ्जानो विस्मृतान्यकृत्यः सुखेन कालं निनाय ।
एकदा संध्यासमये ताभ्यां पत्नीभ्यां युतः सूर्ययशानृपो गवाक्षं ययौ । तदा " भो लोकाः!
श्रोऽष्टमीपर्व भायि ततस्तदाराधने सादरैर्भान्यमिति पटहोद्घोषणां ताभ्यां कपटस्त्रीभ्यां
श्रुत्वा ततोऽवसरं विज्ञाय रम्भाजानतीव नृपतिं प्रति सादरा सती मम्भावादनकारणमवृच्छत् ।

नृपतिरुवाच, हे रम्भे! शृणु; अस्माकं तातेनोक्तं चतुर्दश्यष्टमीरूपं पर्वस्ति
यथामावास्या पौर्णमासी, अष्टाहिकाद्वयं, चातुर्मासीत्रयं, पर्युषणाख्यं वार्षिकं च पर्व,
एतानि अन्यान्यपि पर्वण्युक्तानि सन्ति । ज्ञानाराधनार्थं पञ्चमी च प्रोक्तास्ति । एतेषु
पर्वदिनेषु विहितं पुण्य स्वर्ग-मोक्ष-सुखप्रदं भवेत् ।

[हिन्दी] इसके बाद उन दोनों की प्रीति के रस से आकृष्ट राजा संसार में
स्त्रीभोग ही सार है, ऐसा मानता हुआ रातदिन उनके साथ विविध भोगों को
भोगता हुआ अन्य कृत्यों को भूलकर सुख से समय बिताने लगा । एक बार
संध्या समय में वह राजा अपनी उन दोनों कपटीस्त्रियों के साथ अपने महल के
झरोखे में बैठा था । तभी अकस्मात् " अरे लोगों ! कल अष्टमी का पर्व है आप
उसके आराधन में तैयार रहो " इस तरह का ढिंढोरा सुनाई दिया । उसे सुनकर
उन दोनों से रम्भा नामकी अप्सरा अनजान सो होकर रासा से बोली, " महाराज !
यह कैसी उद्घोषणा है ! राजाने कहा " हे रम्भे ! सुनो हमारे पिताने कहा
था कि चौदस, आठम ये पर्व तिथियां हैं । और अमावस्या एवं पौर्णमास तथा दो
अष्टादश्यां, तीन चौमासी, पर्युषण महापर्व के आठ दिन और ज्ञानपञ्चमी । इन पर्वदिनों में
किये गये पुण्यका फल स्वर्ग और मोक्ष को देनेवाले एवं सुखप्रद होते हैं ।

[गु०] त्वार पत्नी ते यन्नेनी प्रीतिना रसथी जेथायेतो राज्ञ
 'संसारमां श्रीभोगे व अक सार छे' अम मानतो थको रात द्विस तेमनी
 साथे विविध भोगो भोगवतो पीलां कृत्येने लूनीने समय विताववा
 लाग्यो.

अेकवार संध्या समये ते राज्ञ पीतानी आ यन्ने कपटी श्रीयैनी
 साथे पीताना महेवना उड्यामां जेको हुतो, त्वारे अकरमात् " अरे शेको,
 काले आठमनुं पर्वा छे, तमे सौव जेनुं आराधन करवा तैयार रहो. "
 आ प्रकारनो ढढेरो संबणाथो. जेने सांभणाने ते जेमांथी रंभा नामनी
 अप्सरा अन्जली थकने ज्योली : " महाराज ! आ कर्क जतने ढढेरो
 छे ? " राज्ञे कहुं : " हे रंभा, मारा पिताजे कहुं छुं छे ज्येदश जने
 आठम यन्ने पर्वतिथिजे छे. उपरांत अमास. पूनम तथा जे अष्टादशे,
 त्रयो यौमासी जने पुरुषेषु जे वार्षिक पर्वा छे. ज्ञाननुं आराधन
 करवा मटे पंचमी श्रेष्ठ छे. आ पर्वना द्विसोमां करेहुं पुण्य स्वर्ग
 जने भोक्ष आपवावाणं जने सुख देनाहुं छे. "

[सं०] तस्माच्चतुष्पर्व्यामखिलं गृहव्यापारं परित्यज्य शुभं कर्म विधेयम् ।
 पुनश्चतुःपर्व्यां स्नान स्त्रीसंग-कलह-घृत-क्रीडापहास्य मात्सर्य-क्रोधादि-कषाय-संग
 प्रमादादि न किमपि कर्तव्य, प्रियेष्वपि ममता न विधेया, परमेष्ठि-स्मरणादि-शुभ-ध्यानवता
 भाव्यं सामायिकं पौषधं च षष्ठाष्टम-प्रमुखं तपश्च कर्तव्यं जिनपूजाश्च विधेया
 इत्यमेतानि पर्वोप्याराधयन् जनः पुण्यान्यजेयति ततः क्रमेण कर्माणि क्षपयित्वा मुक्तिं याति ।

अतो हे कान्ते ! सप्तम्यां त्रयोदश्यां च लोकप्रबोधाय अयं पटहोद्घोषो मदा-
 देशात् प्रजायते । अथोर्वशी एतन्नृपवचः श्रुत्वा तन्निश्चयमत्कृतापि मायावचनरप्रपञ्चन
 जगाद, ' हे नाथ ! इदं मनुष्यत्वमिदं रूपमिदं राज्यं सर्वं तपःक्लेशादिभिस्त्वया
 कथं विदम्ब्यते ! यथेच्छं सुखानि भुक्त्वा पुनर्मानवो भवः क्व ? राजसद्भोगाश्च वव ?

[हिन्दी] इसलिये चारों पर्वों में सारे गृह व्यापार (कर्म) छोड़कर शुभ कर्म
 करने चाहिये । क्योंकि इन दिनों में थोड़े से धर्म आराधन कर्म करने से भी मनुष्य
 को अधिक फल की प्राप्ति होती है । वह नरक और तिर्यच के बंध से मुक्त हो जाता
 है, शुभायु उसे मिलती है, देवलोक की प्राप्ति होती है । अतः मानवों को अन्य

न्यापार (कर्म) रोकने चाहिये । फिर इन चारों पर्वों में शरीर शुश्रुषार्थ स्नान नहीं करना चाहिये, परस्त्री व स्वस्त्री का गमन का त्याग करना चाहिये । लोगों की मजाक उड़ाना, उनसे हंसी करना, उनकी मस्करी करना यह सब छोड़ना चाहिये । गाली गलीच करना, जुआ खेलना, वैरभाव करना, ईर्ष्याभाव करना, क्रोध आदि कषायों को भी छोड़ देना चाहिये । दृष्ट आदमियों की संगति नहीं करनी चाहिये । धर्म के कार्यों में प्रमाद (गफलत) नहीं करना चाहिये । अपने स्नेहीजनों में ममता भाव भी नहीं रखना चाहिये । इन दिनों में ॐ नवकार मंत्र का ध्यान, जप व आराधना करनी चाहिये । निरतिचार सामायिक, पौषध करना, छठ अष्टमादि तपस्या कर्म देवों के लिये करना चाहिये । फिर जिन भगवान की पूजा व उनको वन्दन करना चाहिये । स्वामिवच्छल, नवकारसी, प्रभावना आदि धर्म कार्य करना चाहिये । शास्त्र व न्याख्यान सुनना चाहिये । इस तरह के धर्मकृत्य इन पर्वतिथियों का आराधना करते वक्त यदि मनुष्य करे तो उसमें धर्म और पुण्य के अंकुर की वृद्धि होती है । अनुकम से चिकने कर्मों को समाप्त कर वह मोक्ष को प्राप्त करता है ।

इसलिये कान्ते ! सातम और तेरस के दिन लोगों को प्रबोध देने के लिये मेरी आज्ञा से यह दिहोरा पीटा । राजा के इन वचनों को सुनकर और उसके दृढ़ निश्चय को समझकर स्वयं चमत्कृत होती हुई भी उर्वशी कपट वचनों के प्रपञ्च से बोली हे नाथ ! यह मनुष्यत्व कितना दुर्लभ है ? फिर ऐसा सुन्दर रूप, यह राज्य लक्ष्मी, ये उत्तम भोगविलास, ये सब बारंबार कब मिलते हैं, अतः आप तप रूप वलेश करके इन प्राप्त साधनों और सामग्रियों को व्यर्थ मत गंवाओ । हे राजन् ! आप तो स्वेच्छानुसार सुख भोग भोगिये, ये राज्य सम्बन्धित सुख क्या बार-बार मिलते हैं ? (इसलिये अब आप इस उद्घोषक को मना कर दो और आप स्वयं भी तपस्यादि धर्म कर्म छोड़ दो ।)

[शु०] आ माटे चारे पर्वोमां अधां संसारी कर्म छोडी दधने शुभ कर्मो करवां जेधये. कारण के आ दिवसोमां थोडुं पणु धर्म आराधननुं कार्य करवाथी मनुष्यने अधिक कृण मणे छे. ते नरक तथा तिर्यच्यभंधथी मुक्त थठ लय छे. तेनुं शुभ आयुष्य वधि छे अने अते देवलोकनी प्राप्ति थाय छे. अठला माटे मनुष्ये संसारनां अधां कर्मोना त्याग करवे जेधये. वणी आ चारे पर्वोमां शरीरशुश्रूषा माटे स्नान न करवुं जेधये; परस्त्री तथा पौतानी स्त्रीनुं सेवन छोडवुं जेधये. लोकोनी

મરકરી કરવી, તેની મળક ઉડાવવી વગેરેનો ત્યાગ કરવો જોઈએ. ગાળી ગલોચ કરવી, જુગાર રમવો, વૈર કરવું, ઠપ્પા કરવી અને ક્રોધ કરવો વગેરે કષાયોને પણ છોડી દેવાં જોઈએ. દુષ્ટ લોકોની સોખત ન કરવી જોઈએ. ધર્મકાર્યોમાં આળસ ન કરવી જોઈએ. પોતાના રનેહીજનોમાં મમતાનો ભાવ પણ ન રાખવો જોઈએ. આ દિવસોમાં ઠંડ નવકારમંત્રનું ધ્યાન, જપ અને આરાધના કરવી જોઈએ. નિરતિયાર સામાયિક, પૌષ્ઠ કરવાં અને છઠ્ઠા અહમ વગેરે તપસ્ચાકર્મ મત દહને કરવા જોઈએ. પછી જિન ભગવાનની પૂજા તથા તેમને વંદન કરવાં જોઈ. સ્વામીવચ્છલ, નવકારસી, પ્રભાવના વગેરે ધર્મકાર્ય કરવાં જોઈએ. શાસ્ત્રી તથા વ્યાખ્યાનો સાંભળવાં જોઈએ. આ જાતનાં ધર્મકૃત્યો આ પર્વતિથિઓમાં આરાધના કરતાં કરતાં મનુષ્યો કરે તો ધર્મ અને પુણ્યના અંકુરોની વૃદ્ધિ થાય છે. અને અનુક્રમે ચીકણાં કર્મોને ખપાવીને તે મોક્ષપદને પ્રાપ્ત કરે છે.

માટે હે કાન્તે! સાતમ અને તેરશને દિવસે લોકોને પ્રયોગ આપવા માટે મારી આજ્ઞાથી આ ઢહેરો પીટેવામાં આવે છે. ત્યારે રાજાનાં આ વચનો સાંભળીને અને તેનો દૃઢ નિશ્ચય જાણીને પ્રભાવિત થતી ઉર્વશી પ્રંપચથી કપટ વચનો બોલી : 'હે નાથ, આ મનુષ્યજન્મ કેટલો દુર્લભ છે? પછી આવું સુંદર રૂપ, આ રાજ્યલક્ષ્મી, આવા ઉત્તમ ભોગવિલાસ-આ બધું વારંવાર ક્યાં મળે છે! માટે આપ તપરૂપી ક્લેશ કરીને આ બધી પ્રાપ્ત થયેલી સામગ્રીઓ તથા સાધનો નકામા ગુમાવો નહીં. હે રાજા! આપે તો સ્વેચ્છાનુસાર આ સુખો ભોગવવાં જોઈએ. આવાં રાજ્ય-સુખ અને ભોગો વારંવાર થોડાં જ મળે છે? માટે આપ આ ઉદ્ધૃષ્ટ-પકને માના કરી દો અને તમે પોતે પણ તપ વગેરે ધર્મકર્મને છોડી દો.'

[સં૦] અથ કર્મયોસ્તન્નરપુત્રુલ્યં તસ્યા વચનં શ્રુત્વા નૃપ ડવાચ રે રે ! ધર્મનિન્દા-માલનસ્વભાવે ! અધમે ! ઈયં તવ વાણી મનામપિ વિદ્યાધરકુલાચારોચિતા ન દ્દયતે । તવ સકલં ચાતુર્યં શિક્ષુ, રૂપં વયઃ કુલં ચ શિક્ષુ, વેન સ્તં જિનપૂજાદિકં સદ્ધર્મકૃત્યં નિન્દસિ, પુનર્મનુષ્યત્વ-સદ્રૂપારોગ્ય-રાજ્યાદીનિ તપસા ગ્રાપ્યન્તે તત્તપઃ કઃ કૃતજ્ઞો નારા-ધવેત્ ? યો નારાધવેત્ સ કૃતહન એવ, ધર્મારાધનતો હિ દેહસ્ય વિહમ્બર્ન ન સ્યાત્ । ધર્મ વિના કેવલં વિષયેસ્તુ વિહમ્બનમેવ, તસ્માદ્ધથેચ્છં ધર્મઃ કર્તવ્યઃ । પુનઃ પુનર્માનવો

भवः क्व ? व्रतधारका मृगसिंहादिबाला अपि अष्टम्यां पाश्विके आहारं न गृह्णन्ति, तर्हि अहं कथं गृह्णामि ?

[हिन्दी] इसके बाद कानो में तपाये हुए सीसे की उहेलनें के समान कर्ण कटु उन वचनों को सुनकर राजा बोला, “अरे! रे! धर्मनिन्दा से मलिन स्वभाव वाली! हे नीच! यह तुम्हारी वाणी थोड़ी सी भी विद्याधर कुल स्वभाव के अनुरूप नहीं है। तुम्हारी सारी चतुराई को धिक्कार हैं, तुम्हारे रूप को, तुम्हारी उम्रको धिक्कार हैं, तुम्हारे कुल को धिक्कार हैं, जो तुम जिनपूजादिक, सदर्मकृत्यों की निन्दा करती हो। यह मनुष्यजन्म और यह सुन्दर रूप, यह राज्य और यह तपस्या, जिस तप के प्रभाव से प्राप्त होती हैं उस तपस्या को कौन अधम व मूर्ख पुरुष नहीं करें! अर्थात् अधम और मूर्खों को छोड़कर सभी उसकी आराधना करते हैं। जो आदमी धर्म की आराधना नहीं करता है वह कुतर्क है। यह निश्चय है कि धर्म की आराधना से मनुष्यों को किसी तरह की विडम्बना नहीं हो सकती। धर्म के बिना विषयों की आराधना तो एक तरह की विडम्बना ही है (क्योंकि राज्य सम्पत्ति अस्थिर है, इस पृथ्वी पर अनेक राजा हो गये हैं। उन्होंने राज्य के लिये उसकी रक्षा के लिए अनेक संग्राम भी समय २ पर किये हैं परन्तु राज्यलक्ष्मी आज तक गई नहीं।) इससे धर्मपालन ही श्रेष्ठ है यही कर्तव्य है बारम्बार मानव जन्म मिलना दुर्लभ है। (कोई पूर्व पुण्ययोग से ही यह राज्यादि प्राप्त हुए हैं सो अगर अब भी धर्मकृत्य नहीं करेंगे तो कब करेंगे।) देखो मृग सिंह आदि पशु और पक्षी भी अष्टमी और चतुर्दशी को आहार ग्रहण नहीं करते हैं तो मैं समझदार हो कर इस तप रूप धर्म को कैसे छोड़ूँ। अतः मैं इन दिनों में आहार ग्रहण कैसे कर सकता हूँ।

[शु०] कानमां तपावेला सीसानो रस रेडयो होय जेवां आ कर्ण-
कटु वचनो सांभणीने राजा ज्योयोः ‘अरे रे, धर्मनी निंदाथी मलिन
थयेला स्वभाववाणी हे नीच स्त्री! आ तारी वाणी विद्याधर कुणना
स्वभावने अनुरूप जरा पशु नथी. तारी वधी चतुराघने धिक्कार छे,
तारा रूपने, तारी उमरने, तारा कुणने धिक्कार छे के तुं जिनपूजा वगेरे
धर्मनां कृत्यानी निंदा करे छे. आ मनुष्यजन्म, आ सुंदर रूप, आ
राज्य अने तपस्या, जे तपना प्रभावथी प्राप्त थाय छे ते तपस्याने

क्यों अधम अपने मूर्ख पुरुष न करे? अर्थात् अधम अपने मूर्ख सिवा-
यना पधा लोको तेनी आराधना करे छे. जे मालुस धर्मनी आराधना
नथी करतो ते कृतघ्न छे. जे नकरी छे के धर्मनी आराधनाथी मनुष्योने
कोष्ठपणु जतनी हेरानगति थती नथी. धर्म विना विषयोनुं सेवन जे
जेक प्रकारनी छेतरपींडी छे. कारणु के राज्यसंपत्ति अस्थिर छे. आ
पृथ्वी उपर अनेक राज्ज्यो थछ गया छे, तेमणु राज्यने माटे अने
राज्यनी रक्षाने माटे दणतो दणत अनेक युद्धो कर्यां छे परंतु राज्य-
लक्ष्मी कोष्ठनी टकी नथी. माटे, धर्मपालन जे श्रेष्ठ छे, अने ते जे करवा
थेज्य काम छे. वारंवार मनुष्यजन्म भणवो दुर्लभ छे. (कोई पूर्वना
पुण्ययोगथी आ राज्य वगेरे प्राप्त थयां छे, तो हुवे पणु जे धर्मकृत्य
नही करीजे तो पछी क्यारे करथुं?) लुओ, मृग, सिंह वगेरे पशुओ
पणु आधम अने ओदरी आहार करतां नथी, तो हुं समजदार थछने आ
तपस्वी धर्मने केम छोडी दछे? आ दिवसोभां हुं भोजन केम करी शकुं?

[सं] तेषां ज्ञातृत्वं च धिगस्तु ये सर्वधर्मकारणं पर्वाराधनं न कुर्वन्ति श्री
युगादित्रिनोपदिष्टमिदमुत्तमं पर्वस्ति तदहं तपो विना कष्टगतप्राणैरपि पर्वं वृथा न
कुर्वे, हे स्त्री! मम राज्यं प्रयातु प्राणक्षयोऽस्तु परं पर्वतपसोऽहं भ्रष्टो न भवामि ।
तत इत्थं क्रोधाकुलं नृपवचः श्रुता उर्वशी मोहमायां प्रकुर्वन्ती पुनरुवाच, स्वामिन् ! भवतः
कायक्लेशो मामृदिति प्रेमरसत एव मयैतद्वचः प्रोक्तं, तस्मात् क्रोधावसरोऽत्र नास्ति ।
पूर्वं तु आवाभ्यां पितृवचः विमुखीभ्यां स्वच्छन्दचाचारी नृपतिर्न वृतः साम्प्रतं पूर्व-
कर्मपरिपाकात् त्वं वरो वृतस्तेनावयोः संसारसौख्यं शील च सर्वमकस्माद् गतं यदि
स्वाधीनपुंस्त्रियोपौगो भवेत्तदा सांसारिकसुखं स्यात्, अन्यथा रात्रिदिवसयोगवद्विडम्बनमेव ।

[हिन्दी] जो मनुष्य ज्ञानवान हैं और धर्माराधन से विमुख हैं उसके ज्ञान को
धिकार हैं, जो लोग श्री आदिनाथ स्वामी से प्ररूपित पर्व और धर्म की आराधना
नहीं करते उन्हें धिकार हैं, मैं उन श्री आदिनाथ स्वामी के इस धर्म को चाहे
प्राणो का नाश हो, मेरा राज्य चला जावे तो भी नहीं छोड़ सकता । हे स्त्री ! मैं
किसी भी हालत में तप भ्रष्ट न होऊंगा । स तरह के क्रोध से भरे हुए राजा के वचनों को
सुनकर मोहरूप माया फैलाती हुई वह उर्वशी फिर मधुर वाणी से कहने लगी । हे
स्वामिन् ! आप अपनी काया को क्यों व्यर्थ ही क्लेश दे रहे हो । मैंने जो कुछ

कहा आपके शरीर को कष्ट न हो यह जान कर ही कहा था । इसमें क्रोधित होने की क्या बात है ? अब यह अक्सर क्रोध करने का नहीं है । हे राजन् ! पहले तो हमने अपने पिता के वचनों को न मानने की गलती की, फिर स्वाधीनतासे किसी राजपुत्र से शादी नहीं की, और अब पूर्व जन्मों के कर्मविपासे आप का वरण किया, इससे हमारे संसार संभ्रन्धी सारे सुख नष्ट हो गये और अकस्मात् हमारा शील भी गया । यदि स्त्री और पुरुष में परस्पर स्वाधीनता हो तो संसार के सुखों का आनन्द के साथ उपभोग हो सकता है । अब तो रात दिन केवल विडम्बना ही अवशिष्ट रह गई है ।

[१०] हे मनुष्य ज्ञानवान् छे अने धर्मना आराधनथी विमुष्य छे तेना ज्ञानने विककारे छे. हे लोकेश्वा आदिनाथस्वामीये प्रप्रेषिलां पर्वा अने धर्मनी आराधना नथी करता तेमने विककार छे. हुं आ आदिनाथस्वामीये कहेला धर्मने मारा प्राणुनो नाश थरी, मारुं राज्य आद्युं जरी तो पणु नही छेहुं. हे स्त्री, हुं कोष्ठपणु डालतमां तपव्रष्ट नही थारुं. ” आ जतनां कोधथी भरेलां राजनां वचनो सांभणीने मोडइपी माया इलावती उर्वशी इरी मधुर वाणीथी कहेवा लागी : ‘हे स्वामिन् ! आप आपनी कयाने शा भाटे नकामो क्लेश आपो छे ? में हे कोष्ठ कछुं ते तमारा शरीरने तकलीइ न पडे अ उद्देशथी कछुं छतुं. अमां क्रोधित थवानी कछ वात छे ? आ अक्सर कोध करवानो नथी. हे राज ! पहिलां तो अमे अमारां पितानां वचनो न मानवानी भूल करी, वणी स्वतंत्र विचारथी कोष्ठ राजपुत्रनी साथे लग्न न कर्यां अने पूर्वभवना कर्मोना उदयथी आपनुं वरणु क्युं; अथी अमारा संसारनां जयां सुष्मो नष्ट थय गयां अने अमारां शील पणु गयुं. हे पुरुष अने स्त्री परस्पर स्वाधीन छेय तो न संसारनां सुष्मोना आनन्द भोगवी शके छे. छेवे तो रात-दिवस मुश्केलीयो न आकी रही छे.

[सं०] “ हे स्वामिन् ! पुरा नाभेपजिनाग्रे त्वया तु मद्राक्यकरणमङ्गीकृतमेव । अहमेकदा त्वत्परोक्षार्थं त्वच्चस्तथाचितवती त्वं तु हा ! हा ! स्वरूपेण कार्येण क्रोधवशं गतः हे नाथ ! अहं शीलादपि सुखादपि उभयस्माद् भ्रष्टा तस्मान्मम चित्ताग्नि सेवनमेव श्रेयः शरणमस्तु । ” इति तद्वचः श्रुत्वा तन्मन्वमानसो नृपः स्ववाक्यं स्मरन् जगाद् । हे प्रिये ! ताततातेन यमुक्तं तातेन च यत्कृतं तत्पर्यणो नाशं तत्पुत्रोऽहं कथं कुर्वं ?

[हिन्दी] हे स्वामी ! श्री आदिनाथ स्वामी के मन्दिर में आपने हमें वचन दिया था कि जैसा हम कहेंगी वैसा आप करेंगे, उन वचनों को तो आपने भुला दिया और मैंने एक बार आपकी परीक्षा के वास्ते याचना की तो हाय ! हाय ! आपने छोटी सी बात में क्रोधावश हो हर्ष स्थान पर विषाद खड़ा कर दिया । हाय ! हमारा तो शील और सुख दोनों भ्रष्ट हो गये । अतः अब इस जीवन को धारण करने में सार नहीं है, अतः हम चिता रचकर अपने शरीर को अग्नि को सौंप देना चाहती हैं । उनके ऐसे वचन सुनकर मोहित राजाने अपने वचनों को याद कर कहा, “ हे प्रिये ! मेरे दादाने जिस धर्म को बताया था और मेरे पिताने जिनधर्म को स्वीकार किया था मैं उसका पुत्र होकर उस धर्म का लोप कैसे करूँ ?

[शु०] हे स्वामी, श्री आदिनाथस्वामीना मन्दिरमां आपे अभने वचन आप्थुं हतुं के जेम अभे कहेशुं तेम तमे करशा. आप जे वचने तो लुली गया अने में इक्त परीक्षा भाटे यधने आपने याचना करी तो हाय हाय ! जेवी नानी वातमां आपे क्रोध करीने हर्षने स्थाने विषाद उभा करी दीया ! हाय ! अमारां तो शील अने सुख अने भ्रष्ट यध गयां. हवे आ जवनने धारण करवामां शुं सार छे ? आथी अभे हवे चिता रचने अमारां शरीरने अग्निने सौंपी देवा छच्छीये छीये. ”

अभनां जेवां वचने सांभलीने तेमना पर मोहित थयेल ते राजजे पीतानां वचने याद करीने कहुं: “ हे प्रिये, मारा दादाजे जे धर्म उपदेश्यो हतो अने मारा पिताजे जे धर्मना स्वीकार कर्यो हतो, हुं तेना पुत्र यधने जे धर्मना लोप केम करुं ? ”

[सं०] हे हरिणाथि ! मम सकलां प्रथ्वीं, कोशं, गजाश्वार्थीश्च सर्वान् त्वं स्वयं गृहाण परं येन न सौख्यं न च धर्मस्तदकृत्यं मां मा कारय । ततः सापि ह्याद्विहस्य कोमलवाण्या श्रोवाच, “ हे राजन् ! भवाहशां सत्यवचनमेव सद्भुक्तं यतो येन वापिना स्वाङ्गीकृतो विघातः कृतः सोऽशुचिस्तस्य भारत्पृथिवी अतिखिद्यति । हे नाथ । यदि त्वया इदमपि कार्यं न सिद्ध्यति, तदा राज्यादिदातृत्वं कथं सेत्स्यति ?

[हिन्दी] हे मृग की तरह चंचल नेत्रोंवाली ! प्रिये ! तुम मेरा सारा राज्य, सारी पृथिवी, सारा खजाना, हाथी, घोड़े आदि सर्व सम्पत्ति ले लो परन्तु जिससे सुख और धर्म का नाश हो ऐसे अकृत्य करने का मुझे न कहो । (हे प्राणियों ! देखो सूर्यवश राजा धर्म के नाश से बचने को अपना सर्वस्व देने को तत्पर हो गया, इस से आप सब को सोचना चाहिये कि इन उर्वशी अप्सराओं पर राजा का इतना मोह था फिर भी वह धर्म के पर्व के दिनों का त्याग करना नहीं चाहता प्रत्युत उसके बदले में अपने प्राण और सम्पत्ति देना स्वीकार करता है । जो प्राणी धर्म को प्राप्त करके किसी के भी कहने से उसे छोड़ देते हैं, और श्री अरिहन्त भगवान की साक्षी में ली हुई सौगन की परवाह नहीं करते, उन्हें नरक के भयंकर कष्ट भोगने ही पड़ेगे, अतः भगवन्तों का कथन है कि जो किसी के कहने से धर्मकृत्य नहीं छोड़ेगा । वही प्राणी सुखी होगा)

राजा के ऐसे वचन सुनकर उर्वशियां हंसकर बोली " हे महाराज ! आप तो जो कुछ वचन निकालते हैं वे सब सत्य ही हैं, हम आप की कितनी प्रशंसा करें ? जो प्राणी स्वयं स्वीकृत वचनों की परिपालना से भ्रष्ट हो जाते हैं, वे अशुचि (अशुद्ध) हैं । ऐसे पापियों के भार से पृथ्वी को भी कष्ट लगता है । (वह कहती है कि यह पापी मुझे भाराक्रान्त करता है, ऐसे मानवों का मुख देखना भी ठीक नहीं ।

हे स्वामी ! यदि आपसे जरा सा भी काम सिद्ध नहीं हुआ तो राज्यादि देने का काम तो हो ही कैसे सकता है ?

[शु०] हे मृगना जेवां यंचल नेत्रोवाणी प्रिया, तुं भारुं आपुं राज्य, आप्पी पृथ्वी, समस्त भज्जना, हाथी, घोडा पगेरे सर्व संपत्ति लब्धे, पणु जेनाथी सुभ अने धर्मना नाश थाय तेवां अकृत्य करवानुं भने न कहे. "

(हे प्राणीओ, लुब्धा, सूर्यवशा राज धर्मना नाशथी भयवा माटे पोतानुं सर्वस्व आपवा तैयार थर्छ गयो, आप सौम्य विचारवुं जेठ्ठये क आ उर्वशी अप्सरा उपर राजने आपलो मोह छतो छतां पणु पर्वना दिवसोमां ते धर्मना त्याग करवा तैयार न छतो अने तेना भदलाभां पोताना प्राणु तथा समग्र संपत्ति छोडी देवा तैयार थयो. जे

प्राणी धर्मने पामीने कोठं पीनना कहेवाथी तेने छोडी दे छे, अने श्री अरिहंत भगवान्नी साक्षीमां दीधिल प्रतिज्ञानी परवा करतो नथी तेने नरकनां भयंकर कष्टो भोगववां पडे छे. माटे भगवतानुं कथन छे કે जे कोठना कहेवाथी पण धर्मकृत्य छोडशे नहि ते प्राणी सुभी यशे.)

राजनां आवा वयनो सांभणी अश्वराओ हसीने पोक्षी: 'हे महाराज! आपे जे वयनो कथां ते अधां सत्य न छे. अमे आपनी केटली प्रशंसा करीअे? जे मनुष्य पोते स्वीकारेलां वयनोना परिपालनथी अष्ट थरुं नय छे ते अशुद्ध छे. अेवा पापीओने आरथी पृथ्वीने पणु कष्ट थाय छे. (ते कहे छे કે आ पापी मने आरे मारे छे, आवा माणुसोनुं मोहुं जेपुं पणु ठीक नथी.)

हे स्वामी! आपनाथी आ नरा जेटहुं पणु काम सिद्ध थतुं नथी तो पछी राज्य आदि आपवानुं तो केवी रीते थतुं हशे?

[सं०] त्वदर्थं मया पितृविद्याधरैश्वर्यं त्यक्तमथैतद्राज्यादिना किं कुर्वे ? अतः हे स्वामिन् ! यदि पर्वभङ्गं न कर्ता तर्हि मत्पुरतो पुगादीशप्रसादं पातय । इति तद्वचनश्रवणमात्रेणैव नृपो ब्रज्राहत इव मूर्च्छां प्राप्य गतचैतन्यो भुवि पपात । तदैव मंत्रिण आदेशदाकुलस्तत्परिकरजनैः शीतलजलादिसंसेकान् नृपो लब्धचैतन्यो विहितः ॥

[हिन्दी] हे राजन् ! तुम्हारे लिये ही अपने पिता विद्याधरों के सारे ऐश्वर्य को छोड़ दिया, (राज्य तो मेरे पिता का भी बहुत बड़ा था उसे भी हमने छोड़ दिया) तो अब हम राज्य आदि को क्या करें ? (मैं तो आपके वचन में आकर के सब कुछ गवां बैठी । आप का तो कोई पता भी नहीं है) हे नाथ ! यदि आप पर्व भंग करना न चाहें तो मेरे सामने आदिनाथस्वामी के मन्दिर को गिरा दीजिये । उनके ऐसे वचन सुनकर वह राजा ब्रज से चोट खाकर आदमी जैसे बेहोश हो जाता है ठीक उसी तरह राजा भी मूर्च्छा को प्राप्त हो कर जमीन पर गिर पड़ा । तब राजा के सेवकों और मन्त्रियोंने आकुल-ब्याकुल चित्त से शीतल जल आदि के उपचार से राजा की मूर्च्छा दूर की ।

[गु०] हे राजन् ! तमारे भातर न अमे अमारा पिता विद्याधरनां ऐश्वर्यो छोडी दीधां, (राज्य तो मारा पितानुं पणु मोहुं हतुं.) तो

हुवे राक्षस वगेरेने शुं करीये ? (अमे तो आपनी उपर विश्वास राभीने ये पधुं शुभावी पेक्षां, अने आप तो हुवे आम कडे छे !) हे नाथ, जे हुवे आप पर्वभाग करवा न थाळता सेा तो मारी सामे आदिनाथ स्वाभीनुं मंदिर तोडि पाडे. ”

येनां आवां वयने सांभजीने ते राक्ष वज्जना आधातथी माथुस जेम पेडोश थधने पडी नथ तेम भूच्छा पाभोने जमीन उपर पडी गयो. त्यारे राक्षना सेवकोये अने मंत्रीयोये आकुण व्याकुण थधने शीतल जण वगेरेना उपचारथी राक्षनी भूच्छा दूर करी.

[सं०] अथ सूर्ययज्ञा नृपः स्वपुरःस्थितां तां स्त्रियं दृष्ट्वा कुपितो जगाद, “ रे अधमे ! अयं तवाचारो वाण्या मत्पुरः स्वकुलाघमतां विकिरति यत उद्गार-वदाहारो भवेत् । त्वं विद्याधरपुत्री न किन्तु चाण्डालपुत्री इत्यसे । मया मणिभ्रमेणैव काचखंडादरथंक्र । यो देवस्त्रैलोक्यनाथस्त्रैलोक्यवन्दितस्तत्प्रासादभङ्गकृत् कोऽपि कथं भवेत् ? तस्मात् हे स्त्री ! स्वयं स्ववचसा बद्धं मामनृणं कर्तुं धर्मलोपं विनाऽन्य-द्याचस्व ? पर्वलोपं चैत्यध्वंसं चाहं सर्वथा न करोमि । तच्छ्रुत्वा सापि ईषद्विद्वस्य पुनस्तमुवाच हे नाथ ! अन्यदन्यदिति ज तद्वचो दूरतो याति । यदिदं त्वं नाङ्गीकर्ता तर्हि त्वं त्वयं स्वपुत्रकस्य शिरश्छित्त्वा सद्यो मया देहि ! अथ राजा विमृश्य व्रदतिस्म हे सुलोचने मत्सुतो मत्तोऽभवत् तस्मान्मम शिरस्तव करतलरथमस्तु ।

[हिन्दी] इसके बाद सूर्ययज्ञा राजाने सामने बैठी हुई उन अप्सराओंको देखा, उन्हें देखते ही राजा क्रोध से तप गया और कठोर वचनों से बोला, “ अरे अधमे ! ये तुम्हारे वचन आचार को तथा तुम्हारे कुल की अधमता को दिखाते हैं । तुम विद्याधरों की पुत्रियां नहीं हो, किसी चाण्डाल की पुत्रीयां हो । मैंने मणिरत्न के धोखे में काच के टुकड़ों का आदर किया । अरे पापिनियों ! जो देवाधिदेव तीन लोक के स्वामी हैं और तीनों लोकों से पूजित हैं, उनके मन्दिर को कैसे तोड़ सकना है ? इसलिये हे स्त्री ! मैं स्वयं अपने ही वचनों से तुम्हारे आगे बद्ध हूँ अतः तुम मुझे झूठे और धर्मलोप के कृत्य करने को मत कहो, धर्मलोप के कृत्य के जलावा कुछ ओर मांगो ।

पर्वों का लोप और चैत्य का ध्वंस तो मैं किसी तरह नहीं करूंगा । यह

સુનર વહુ મી મુસ્કરાકર ફિર વોલી, “હે નાથ ! આપ તો વાર વાર દૂસરા દૂસરા વચન કહતે હો । પરન્તુ એક કા મી પાલન નહીં કર રહે હો, યદિ એસા હી હો તો આપ અપને હી હાથોં સે અપને પુત્ર કા શિર કાટ કર શીવ્ર હી મુક્ત દે દે । તવ રાજાનેં ધૈર્ય ધારણ કર કહા । “હે સુલોચને ! મુક્ત સે હી મેરા પુત્ર ઉત્પન્ન હુઆ હૈ, અતઃ મેરા શિર હી મેં તુમ્હેં સોંપતા હૂં ।”

[૧૦] ત્યાર પછી સૂર્યવંશ રાજ્યે પોતાની સામે બેઠેલી તે અપ્સ-રાણી બેઠી. એમને બેતાં જ રાજા ક્રોધથી તપી ગયો અને કઠોર વચનોથી બોલ્યો : “હે અવમ સ્ત્રીઓ ! આ તમારા આચાર અને વચન તમારા કુળની અવમતા બતાવે છે. તમે વિદ્યાધરની પુત્રીઓ નથી, કોઈ ચાંડાલની પુત્રીઓ હો એવું લાગે છે. મેં મણિ અને રત્ન સમજીને કાચના ટુકડાનો આદર કર્યો. અરે પાપિણીઓ ! જે દેવાવિદેવ ત્રણે લોકના સ્વામી છે અને ત્રણે લોકથી પૂજ્ય છે તેના મંદિરને કોઈપણ કેવી રીતે તોડી શકે ? હે સ્ત્રીઓ ! જે કે હું મારાં વચનોથી બંધાયેલો છું પણ તમે મને ખોટાં અને ધર્મનો લોપ થાય તેવાં કામો સિવાય બીજું ગમે તે માગો. પવોનો લોપ તથા ચૈતન્યનો ધ્વંસ હું કોઈ રીતે નહીં કરું.”

આ સાંભળીને તે પણ હસીને બોલી : “હે નાથ, આપ તો વારંવાર બુદ્ધ કહો છો, પણ એકપણ વચનનું પાલન કરતા નથી. જે એમ જ હોય તો આપ આપને હાથે જ આપના પુત્રનું માથું કાપીને મને આપી દો.” ત્યારે રાજ્યે ધૈર્ય ધારણ કરીને કહ્યું : “હે સુલોચના ! મારો પુત્ર મારાથી જ ઉત્પન્ન થયેલ છે. તેથી મારું માથું જે હું તને સોંપી દઉં છું.”

[સં૦] इत्युक्त्वा नृपः करेण खड्गं गृहीत्वा यावत् स्वशिरःछेदार्थमुद्यतो भवति तावदेव सा तस्य खड्गधारां बबन्ध । न पुनस्तस्य सत्वस्य, ततो राजा खड्गधारा बन्धनाद्विलक्षः सन् कण्ठनालविडम्बकं नवं नवं खड्गं गृहीत्वान् । यदासीं भूपतिर्मनागपि सन्वान्न चचाल तदा ते स्त्रियौ स्वकीयं रूपं प्रादुष्कृत्यात्याराज्यं जयेत्पूचतुः पुनः ।

जय त्वं वृषभस्वामि-कुलसागरचन्द्रमः ।

जय सत्ववतां धूर्य ! जय चक्रीशानन्दन ! ॥ १॥

[हिन्दी] यह कहकर राजा ने तलवार हाथ में ली। वह ज्योंही अपने सिर को काटने के तत्पर हुआ त्योंही उस अप्सरा ने उस तलवार की धार बांध दी। राजा ने तलवार के वार को व्यर्थ जाते देखकर नई नई कई तलवारें मंगवाई, और सिर काटने का प्रयत्न किया परन्तु असफल रहा। अब राजा अपने वचन के भंग के भय से उदासीन हो गया पर राजा ने अपना सत्व नहीं छोड़ा। यह देखकर वे दोनों अप्सराएँ अपने मानवी रूप को छोड़कर देवरूप से प्रगट हुईं और आदर से राजा की वयजयकार करने लगीं।

हे ऋषभदेवस्वामीजी के कुल रूप सागरमें उत्पन्न चन्द्रमा के समान यशस्वी सूर्ययशा राजा ! हे सत्यवंत ! हे धैर्यवन्त पुरुषों में श्रेष्ठ ! हे चक्रीश नन्दन ! (चक्रवर्ती राजाओं के स्वामी श्री भरत चक्रवर्ती के पुत्र !) तुम्हारी जय हो ! जय हो !

[गु०] आभ कळीने राज्ञे तलवार हाथमां लीधी. ते जेवो पोतानुं माथुं कापवा तैयार थयो तेवी ते अप्सराञ्चोञ्चो तलवारनी धार बांधी दीधी. राज्ञे तलवारना वारने व्यर्थ जेतो जेधने नवी नवी भीळ केटवीथे तलवारे मंगवावी अने पोतानुं माथुं कापवानो प्रयत्न क्यो पशु तेमां निष्फळ गथो. हवे राज पोताना वचनभंगना जयथी उदासीन थई गथो, छतां पशु तेजे पोतानुं सत्व छेड्युं नही. आ जेधने ते जन्ने अप्सराञ्चो पोतानुं मानवीरूप छेडीने देवइपथी प्रगट थई अने आदरपूर्वक राज्ञेना जयजयकार करवा लागी.

” हे ऋषभदेव स्वामीजना कुणइपी सागरमां उत्पन्न थयेल चंद्रमा जेवा यशस्वी सूर्ययशा राज, हे सत्यवंत ! हे धैर्यवाणा पुरुषमां श्रेष्ठ ! हे चक्रीश नंदन ! (चक्रवर्ती राज्ञेना स्वामी भरत चक्रवर्तीना पुत्र) तमासे जय हो, जय हो !

[सं०] अहो तव धैर्यम् ? अहो ते मनसो निश्चयः पत्स्वस्य विनाशेऽपि मनाक् स्वव्रतं न त्यक्तवान्, देवेन्द्रः स्वसभायां देवानां पुरस्तवातुलं सर्वं विशेषतः प्रशंसत् । हे राजन् ! आवाभ्यां अश्रद्धानाभ्यां स्वर्गादागत्य स्वनिश्चयात् त्वं क्षोभयितुमारब्धः परं त्वां क्षोभयितुं कोऽपि न समर्थः । हे जगत्प्रभुकुलावर्तस ! हे वीर ! त्वयैव इयं पृथ्वी रत्नखरिति सत्यं नाम विभक्तिं । इत्थं तयोः स्तुवत्योस्तत्र देवेन्द्र उपायमत् । जय

जय शब्दमन्त्रं पुष्पवृष्टिं च कृतवान्, तदा प्रतिज्ञाभ्रष्टा उर्वशी इन्द्रेण सोपहासं निरीक्षिता सती तत्पुरतो नृपगुणान् जगौ । इन्द्रोऽपि तस्मै वरमुकुटकुण्डलाङ्गदहारान् दत्त्वा तभ्यां सह स्वर्गं ययी ।

[हिन्दी] अहो तुम्हारा धैर्य प्रशंसनीय है ! अहो ! तुम्हारा मन का निश्चय जो कि आपने अपने विनाश प्राप्त होने पर भी थोड़ा सा भी व्रत भंग नहीं किया । सौधर्मेन्द्र ने अपनी सुधर्मा सभा में देवताओं के समक्ष एक बार आपके सच्च की प्रशंसा की थी । तब हम दोनों ने उसे नहीं माना । हम इस बात की परीक्षा व निश्चय करने के लिये स्वर्ग से भूतल पर आई । पर हे राजन् ! हे जगत्प्रभुकुलावतंस (तीनों जगत के स्वामी श्री ऋषभदेव के कुल में मुकुट के समान) हे वीर ! तुम जैशों को पैदा करके ही पृथ्वी रत्नसू कहलाती है । (तुम्हारी ही यह मनुष्यवतार धन्य है । तुम जैसे लोग हम देवताओं से भी विचलित नहीं हो सकते । हे राजन् ! हमने आपकी अवज्ञा की हो, आपसे अविनय (हुआ हो) क्यो हो तो आप क्षमा करें । आप घड़े हैं हम से भूल हो गई हैं, इस तरह उर्वशियों ने क्षमा पाचना की । इस प्रकार वे दोनों राजा की स्तुति कर रही थी कि देवेन्द्र स्वयं वहां आ गये । जय जय की ध्वनि के साथ ही स्वर्ग से पुष्प वर्षा हुई । तब इन्द्रने उपहासपूर्वक उन दोनों भ्रष्टप्रतिज्ञ उर्वशियों को देखा । उर्वशियों ने राजा के गुणों का गान किया । इन्द्र ने भी सूर्ययशा राजा को श्रेष्ठ मुकुट, कुण्डल, अङ्गहार आदि दिये, और उन दोनों अप्सराओं के साथ स्वर्गगमन किया । (देखिये ! धर्म तत्पर और दृढ़ लोगों के सामने, इन्द्रादि देवता भी नमते हैं) ।

[शु०] अहो, तमारे धैर्य वभाषुवा लायक छे. तमारा मननो निश्चय के जे पीतानो विनाश प्राप्त थये छतां प्रतनो भंग न कथे. सौधर्मेन्द्रे पीतानी सुधर्मा सभाभां देवताओंनी समक्ष अंकवार आपना सत्पनी प्रशंसा करी छती, तयारे अमे पन्नेअं ते न मानी, अने तमारी परीक्षा करवा अने अमारा मननी भातरी करवा भाटे अमे स्वर्गभांथी पृथ्वी छपर आव्या अंअं. परंतु हे राजन् ! हे जगत्प्रभुकुलावतंस ! (तजे शोकना स्वामी श्री ऋषभदेवना कुणना मुगठ समान) हे वीर, तमारी जेवा रत्ननेने पैदा करीने जे पृथ्वी रत्नप्रसवा कहैवाय छे. (तमारे आ मनुष्यावतार धन्य छे. तमारी जेवा लोकें अमारा देवताथी पशु विचलित थता नथी. हे राजन् ! अमे तमारी अवज्ञा करी छाय, तमारे

कोई अविनय थयो होय तो क्षमा करवते. आप भोटा छे, अने आ.भा-
राथी भूख थई गई छे, आ प्रमाणे अप्सराओंके क्षमायाचना करी.)

आ प्रमाणे ते अन्ने राजनी स्तुति करी रही हती ते वअते देवेन्द्र
पोते त्यां पधार्या, अने जयजयकारना ध्वनि साथे ज आकाशमांथी पुष्प
वृष्टि थई. त्यारे छन्द्रे उपहासपूर्वक ते अन्ने प्रतिज्ञाब्रह्म अप्सरा-
ओंके जेठ. अप्सराओंके राजना गुणोत्तुं गान कयुं. पछी सूर्ययशा
राजने श्रेष्ठ मुगल, कुंडल, अंगुहार वगेरे आभूषणो आप्यां अने ते
अन्ने अप्सराओं साथे स्वर्गमां गया. (लुओं, धर्ममां तत्पर तथा दद
रहेनार लोकोंने छन्द वगेरे देवताओं पणु नमे छे.)

[सं०] सूर्ययशाराजा अपि सत्यप्रतिज्ञः सन् सन्नीत्या पृथ्वी पालयति स्म ।
अथ स राजा भरतेश्वरान् पृथ्वी जिनगृहमपि वन् श्रीसंघपात्रया जन्म पवित्रयन्
श्रीयुगादिजिनचरणवन्धित्वं चतुर्दश्यष्टमीपूर्वं आराधयामास, तथा व्रतधारिणः
स्वगृहे भोजयामास ।

[हिन्दी] सूर्ययशा राजा भी सत्यप्रतिज्ञा से प्रसन्न होकर श्रेष्ठ नीती से पृथ्वी
का पालन करने लगा । इसके बाद उसने भरत चक्रवर्ती की तरह पृथ्वी में कई
जैनमन्दिर बनवाये और उसकी ओमा बढाई । कई तरह की संघ यात्राएं निकाल
कर अपने जन्म को सफल किया । श्री आदिनाथ स्वामी के चरण कमल की तरह
नित्य चतुर्दशी, कष्टमी आदि पर्वों की आराधना की तथा व्रतधारण करनेवाले
भावकों को अपने घर भोजन कराया ।

[गु०] सूर्ययशा राज पणु सत्य प्रतिज्ञ यइने श्रेष्ठ नीतिथी पृथ्वीनुं
पालन करवा लाग्ये. त्यार पछी तेणुं भरत चक्रवर्तीनी जेम धरुं
जिनमहिरो मंथान्यां अने तेनी शोभा वधारी. केटसीये संघयात्राओंका कही
अने पौताना जन्मने सङ्ग कयें. श्री आदिनाथस्वामीना चरणकुमलनी
तथा चतुर्दशी, अष्टमी वगेरे पर्वोनी आराधना करी तथा व्रत धारण
करवावाणा आवडोने पौताने त्यां भोजन कराव्यां.

[सं०] पूर्वं भरतेन काकिणीरत्नरेखाभिः श्रावकाः अङ्किताः । सूर्ययशास्तु सौवर्णो-
पवीतेन तेन तेऽङ्किताश्चक्रिरे । तस्य राज्ञ उदारचरिता बहवः कुमारा आसन् यथा श्री
ऋषभस्वामिन् इक्ष्वाकुवंशो बभूवते तथा सूर्ययशस्य सूर्यवंशोऽभवत् ।

[हिन्दी] पहिले राजा भरत चक्रवर्ती ने श्रावकों की पहिचान के लिये कांगणी-
रत्न की जनेऊ पहिनाई अर्थात् रत्न शलाकाओं से उन्हें चिन्हित किया। उसी तरह
सूर्ययशा राजाने भी (छः छः मास तक परीक्षा करके) श्रावकों को सुवर्णयज्ञोपवीत
पहनाई। (तदन्तर चांदी की जनेऊ का चलन हुआ, उसके बाद सूत के धागों
की जनेऊ चली। पीछे अनुक्रम से आठवें तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभुस्वामी के निर्वाण
(मोक्ष) के अन्तर कितने ही दिनों के भीत जाने के बाद एक बार इस पृथ्वी पर
चतुर्विध संवरूप धर्म विच्छेद हो गया। तब लोगोंने इन जनेऊ धारियों से धर्म
पूछा? तब जनेऊ धारी, भ्रष्टाचारी, लोभ के वशीभूत हुए एव विषयासक्त हुए ये
लोग बोले, "हमें स्त्रियाँ, जमीन, धन दौलत, घर, हाट हवेली आदि दान करो
यही धर्म है, हम ब्राह्मण हैं, हमें देने से बहुत लाभ होगा।" तब लोगों ने दान
देना शुरू किया। अनन्तर तीर्थंकर महाराज हुए। तब वापिस धर्म प्रवृत्त हुआ और
जनेऊ धारी ब्राह्मणाभास ऐसे ब्राह्मणों को मिथ्यात्वी ठहराये। जनेऊ की मर्यादा
छुड़ाई। अनन्तर इनमें जो पक्के थे भारी कर्मवाले थे वे तो ब्राह्मण नामसे प्रसिद्ध
हुआ और उन्होंने मनमाने शास्त्र रचकर मिथ्याधर्म की प्ररूपणा की। श्री सूर्ययशा
राजा के बहुत से (सवा लाख) पुत्र हुए। जिस तरह श्री ऋषभदेव स्वामी से इक्ष्वाकु-
वंश हुआ ठीक उसी तरह सूर्ययशा से सूर्यवंश हुआ। इस राजाने लाख पूर्व तक
राज्य किया।

[गु०] पहिलाना पभतमां राज् भरत चक्रवर्तीये श्रावकोनी आण-
आणु माटे तेभने "कांगणी रत्न" नी जनोर्ध पहिरावी अर्थात् रत्न-
शलाकाओथी तेभने चिन्हित कयां. ओवी रीते सूर्ययशा राज्भये पणु (छ
छ महिना सुधी परीक्षा करीने) श्रावकोने सोनानी जनोर्ध पहिरावी.
(ते पछी चांदीनी जनोर्धनुं यलणु थयुं अने ते पछी सूतरनां तारनी
जनोर्धनुं यलणु थयुं. त्यार पछी अतुकुमथी आठमा तीर्थंकर श्री चंद्र
प्रभुस्वामीना निर्वाणु पछी केरलाये वर्षी पीती गया पछी ऐकवार आ
पृथ्वी पर चतुर्विध संवरूप धर्म विच्छेद थर्त गयो. त्यारे लोकोये ते

जनोर्ध्वधारीऽग्निने धर्मं शुं छे ते पूछ्युः. त्वारे जनोर्ध्वधारी, अष्टाधारी
 अने दोभने वश थयेवा ते विषयासक्त लोकोग्ने कथ्युः "अग्ने स्त्रीऽग्नि,
 जर्मीन, धन-दोषत, धर, लाट, उवेवी वगेरेनुं दान करे, अग्ने धर्म छे.
 अग्ने आह्वणो छीऽग्ने अने अग्ने देवाथी तग्ने अलु लाभ थरे" त्वारे
 लोकोग्ने तेग्ने दान देवानुं शरु कथ्युः. त्वारपछी तीर्थ-कर मडाराज
 थया. त्वारे वणी पाछे धर्म प्रवृत्त थया अने जनोर्ध्वधारी अग्ने कडेवाता
 आह्वणोने भिथ्यात्वी करवा, अने जनोर्ध्वनी मर्यादा ओडावी. त्वार-
 पछी तेमां जेज्यो पाका हुता अने भारे कर्मवाणा हुता ते तो आह्वण
 नामथी प्रसिद्ध थया अने अग्ने मनुमान्यां शास्त्रो रथीने भिथ्या
 धर्मनी प्रउपणा करी.)

श्री सूर्ययशा रजने सवालाम् पुत्र थया. जेवी रीते श्री ऋषभ-
 देव स्वामीथी छेदेवाकु वंश बाल्यो अग्ने ज रीते सूर्ययशा राजनी
 सूर्यवंश बाल्यो. आ राजने लाभ पूर्व सुधी राज्य कथ्युः.

[सं०] सोऽप्येकदा पितृवत्स्वं रत्नदर्पणे पश्यन् संसारासारतां धारयन् केवलज्ञानं
 प्राप्य बहून् भव्यान् प्रतिबोध्य मुक्तिं प्राप । (इति निज-नियम-वह-पालने सूर्ययज्ञो-
 नृपकथा ।)

[हिन्दी] वह राजा भी एक दिन स्नान मञ्जन करके अपने पिताश्री भरत
 चक्रवर्ती की तरह अपने स्फटिक रत्नमयी कांच के भवन में शरीर को देखकर
 संसार की असारता का विचार कर केवलज्ञान को प्राप्त हुआ । (देवताओं ने जाकर
 उनको ओषा और मुहपत्ति दी । उन्होंने दीक्षा ली और विहार किया । कई भव्य-
 जीवों को प्रतिबोध दिया । कई मुनिराजों को साथ वे अष्टापद पर्वत पर गये ।
 वहां अनशन करके मोक्ष को प्राप्त हुए । " भरत १, आदित्ययज्ञ २, महायज्ञ ३,
 अतिबल ४, बलभद्र ५, बलवीर्य ६, कीर्तिवीर्य ७, जलवीर्य ८, दंडवीर्य ९, इन
 नौ राजाओं ने श्रावको की पूजा की, तीन खंड में अखंड राज्य किया और श्री
 भरत चक्रवर्ती की तरह 'आरीसा भवन' में भावना भाकर केवलज्ञान प्राप्त किया
 और मोक्ष गये । उनकी यज्ञ-कीर्ति आज तक चल रही है ।)

परमार्थः—यह है कि सूर्ययज्ञ राजाने अपने अत्यन्त स्नेहियों के वचन नहीं

मानकर मरना स्वीकार किया परन्तु व्रतभंग नहीं किया, जिससे वह अविचल सुख को प्राप्त हुआ।

[सु०] ते रात्र पशु अेक दिवस स्नान मन्जन करीने पोताना पिताश्री भरत यक्षवतीनी जेम पोताना स्फुटिक रत्नमय काथलवनभां जर्ष पोतानुं शरीर जेतां आ संसारनी असारतानो विचार करी डेवणज्ञानने पाभ्या. (देवताओये आवीने तेभने ओधो तथा मुहुपत्ति आभ्यां. तेमणे दीक्षा लीधी अने विहार कर्यो. डेटलाथे लव्य छवोने उपदेश कर्यो. डेटलाथे मुनिराज्जेने साथे लछने ते अष्टापद पर्वत उपर गया. त्यां अनशन करीने मोक्षपदने पाभ्या. (१) भरत (२) आदित्य यश. (३) महायश (४) अतिफल (५) फलभद्र (६) फलवीर्य (७) क्षीर्तिवीर्य (८) ललवीर्य (९) दंडवीर्य—आ नव रात्रओये श्रावडोनी पूज करी, जणे अंड अणंड रात्र्य कर्युं अने भरत यक्षवतीनी जेम “अरीसा-लवन” भां भावना भावीने डेवणज्ञान प्राप्त कर्युं अने मोक्षे गया. अेभनी यश-क्षीर्ति आज सुधी थाली आवे छे.

आ छे सूर्यशरा रात्रनुं वृत्तांत. डे जेणे पोताना अत्यंत स्नेही-ओनुं पशु वचन नही मानतां भरवानुं स्वीकार्युं, परंतु व्रतभंग थवा न दीधुं अने जेना परिणामे तेने अविचल सुख मण्युं.

[सं०] मन्वात्मभिरष्टाद्विक पर्वणीत्यं धर्मकर्मणि यत्नं विधाय तत्पर्वाराधनीयं येनेह परत्र च सर्वैष्टखिद्धिः ।

[हिन्दी] इसलिये हे भव्यों ! श्री पर्युषण महापर्व आने पर, पौषत्र (पोसा) सामायिक करना, त्याग पंचस्त्राण करना । वकथा नहीं करना । विकथा करने से बिना प्रयोजन निबिद्ध कर्मबन्ध होता है । धर्म के दिनों में पापकर्म के मार्ग छोड़ देने चाहिये । एकाग्रचित्त से “कल्पसूत्र” का श्रवण करना चाहिये, क्या कि इस सूत्र के सुनने से अवश्य आत्मा का कल्याण हो जाता है । फिर इस सूत्र की महिमा (महोत्सव) करना चाहिये, जिससे कई जीव कई जीव को प्रतिबोध प्राप्त हो, और जैनधर्मका अनुमोदन करे । “देखो ! जैनी लोग कैसे धर्मी हैं, इनका धर्म

कितना अच्छा है ? ” इत्यादि धर्मकृत्य करके इस पर्व की आराधना करना । ऐसा करने से मानवों को निश्चय ही महान सुख की प्राप्ति हो जाती है । यह श्री वीतरागदेव की वाणी इस लोक और परलोक में सुख समाधि को प्राप्त हो । “ इस पर्व के आराधन से इस लोक में यज्ञ, कीर्ति और परलोक में बारह देवलोक, नव त्रैवेयक, पांच अनुत्तर विमान तक परम्परा से मोक्ष और शाश्वत अखंड सुख की प्राप्ति होती है । ”

[इति तृतीय-व्याख्यानम्]

[सु०] झटला मारे है अव्य लुवे! श्री पर्युषण महापर्व आवे त्यारे पौषध सामायिक करवां अने त्यागना पर्युषणालु लेवां. विकथा न करवी. विकथा करवाथी प्रयोजन विनानां निमित्त कर्मणध थाय छे. धर्मना द्विस्रोमां पापकर्मना भार्गी ओडी देवा जेधंअ. अक्रात्र चित्थी ' कल्पसूत्र' तुं अवणु करवुं जेधंअ, कारणु के आ सूत्रना अवणुथी अवश्य आत्मानुं कल्याण थाय छे. वणी आ सूत्रना महिमा (महोत्सव) करवो जेधंअ. जेनाथी धणा लुवोने प्रतिपाध भजे अने जैनधर्मनुं अनुमोहन थाय “ लुओ. जैन लोके केवा धर्मी छे, अमनो धर्म केवा सारो छे. ” वगेरे धर्मकृत्यो करीने आ पर्वनी आराधना करवी. आम करवाथी अनुष्येने निश्चय महान सुखनी प्राप्ति थाय छे आथी वीत. रागदेवनी वाणी आ लोक अने परलोकमां सुख समाधिने अपावे छे. आ पर्वना आराधनथी आ लोकमां यज्ञ, कीर्ति अने परलोकमां पार देवलोक, नव त्रैवेयक, पांच अनुत्तर विमान सुधी परंपराथी मोक्ष अने शाश्वत अखंड सुखनी प्राप्ति थाय छे.

[इति तृतीय व्याख्यान समाप्त]



अथ ग्रन्थकर्ता-प्रशस्तिः

संवत्-द्वयोप-रसाष्टम्यादि-प्रमिते, मासे शुची शोभने,
पक्षे प्रोज्ज्वलतायुते सुविहिते, सम्यग् द्वितीया-तिथौ ।
पूज्य-श्री-जिन-हर्षहरिगणभद्राज्ये मुदाष्टाहिका,
व्याख्यानां सुगमं हितं सुविहितं श्री जेललाद्रो पुरे ॥१॥

श्रीमन्तो गुणशालिनः समभवन् प्रीत्यादिमाः सागरा,-
स्तच्छिष्यामृत-धर्म-वाचकवरा आसन् स्वधर्मादराः ।
तच्छिष्यैर्जिनराजराजि-चरणांभोज-प्रसक्तैः क्षमा,-
कल्याणाभिध-पाठकः सुमनसां भद्रावतां प्रीतये ॥२॥ (युग्मम्)

* *

ग्रन्थकर्ता की प्रशस्तिः

[हिन्दी] श्री जैसलमेर ग्राम में विक्रम संवत् १८६० के भाद्रपद शुक्ला २
द्वितीया के दिन श्री जिनहर्षहरि महाराज के राज्य में मुनि श्री क्षमाकल्या-
णजी पाठकने प्रसन्नचित हो इस अष्टाहिका की संस्कृत में रचना की। इस संसाररूप
समुद्र में अनेक श्रीमन्त और गुणशाली लोग हो गये। उन तपस्वी लोगों के
मध्य श्री जिनहर्षहरि श्रेष्ठ हुए जिनके अनेक शिष्य जैनधर्म में आदर करके
सुन्दर कथावाचक हुए। उनके ही चरण कमलों में उनके ही आशीर्वाद से युक्त
श्री क्षमाकल्याणपाठकने यह ग्रन्थ भद्रावान्, सुन्दर मनवाले पाठकों व भावकों
की प्राप्ति के लिये बनाया ॥ १-२ ॥

अन्थकर्तानी प्रशस्ति-

[गु] श्री जेसलमेर गामभां विक्रम संवत-१८६० ना भाहरवा सुह पीजने दिवसे श्री जिनदर्पसूरि महाराजना राज्यभां मुनिश्री क्षमा-कल्याणुल पाठके प्रसन्नचित्त यधने आ अष्टाह्निकानी संस्कृतभां रचना करी. आ संसाररूपी समुद्रभां अनेक श्रीभंत अने गुणशाली लोकें यध गया. अ तपस्वी लोकेंभां श्री जिनदर्पसूरि श्रेष्ठ थया. जेमना अनेक शिष्यो जैनधर्मभां आहर करीने सुंदर कथाना वांचनार थया. तेजोना अरखुकमलोभा तेमना ज आशीर्वाद्धी युक्त पाठक श्री क्षमाकल्याणुलये आ अथ श्रद्धावान अने सुंदर मनवाणा पाठके अने श्रावकेनी प्रीतिने भाटे रच्यो.



अनुवादकस्य प्रशस्तिः ।

श्रीसौधर्मपरम्परामुपगतः श्रीरत्नसूरिर्बभौ ।
शिष्यस्तस्य सदा धर्मैकनिपुणः सूरि क्षमान्वधघृत् ॥
देवेन्द्रश्च ततो बभूव निपुणः कल्याणनामा सुधीः ।
शिष्यस्तस्य प्रमोदसूरिरथ सोऽत्यन्तं जनानुद्धरत् ॥

तस्य शिष्येण रानेन्द्र-सूरिणा बालहेतवे ।
बालबोधाभिध्वयाख्या, कृता संघस्य प्रीतये ॥

मुनिनयन-नवेन्द्री वत्सरे कृष्णपक्षे ।
शरदि शुभसुमासे, कार्तिके शक्तितिथ्याम् ।
व्यरचि शुभजनानां, हेतवे क्वकसीति ॥

[हिन्दी] श्री सुधर्मास्वामी की परम्परा में क्रमशः श्री रत्नसूरिजी हुए । उन के शिष्य क्षमा धारण करने में निपुण श्री क्षमासूरिजी हुए । उन के पट्ट पर श्रीमद् देवेन्द्रसूरिजी और उन के पट्टविभूषक विद्यावन्त निपुण श्री कल्याणसूरिजी हुए । उन के शिष्य श्री प्रमोदसूरिजी हुए । उन के शिष्य श्री राजेन्द्रसूरिने बालजीवों के हित लिये एवं कुर्षी आदि संघ की विनतीसे विक्रम सं. १९२७ में इसके भाषानुवाद की रचना की । उनके विद्वाद् शिष्य रत्न, प्रकट प्रभाकर श्रीमद् विजयतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराजने संशोधन करने उसको प्रकाशित करवाया । उसकी प्रशस्ति इस प्रकार है :-

अतिनिर्विघ्नता यकी, पूरण भयो यो ग्रन्थ ।
ताकु पढत पढावते, पावे यश प्रसरन्त ॥१॥
श्रावण शुक्ला प्रतिपदा निशिषतिवार उदार ।
ग्यारह छक्का नवशशि संवत् घर्यो विचार ॥२॥
सोहम गण गगनांगणे दिनकर जिम उद्योत ।
सूरिविजयराजेन्द्र तिम, प्रगटी शुभ जग ज्योत ॥३॥
तासु शिष्य शोधन कियो, मुनियतीन्द्र इकचित ।
पढत पढावत भविकजन, पाये मोक्ष अरु वित्त ॥४॥

(૨૦) શ્રી સુધર્માસ્વામીની પરમ્પરામાં ક્રમશઃ શ્રી રત્નસૂરિય યયા. તેના શિષ્ય ક્ષમા ગુણને ધારણ કરવામાં નિપુણ શ્રી ક્ષમાસૂરિય યયા. તેમના પાટ શ્રીમદ્ દેવેન્દ્રસૂરિય યયા. અને તેમના પદ્મવિભૂષક વિદ્યાવન્ત નિપુણ શ્રી કલ્યાણસૂરિય યયા. એમના શિષ્ય શ્રી પ્રમોદ-સૂરિય યયા. જે ભવ્યજનોના ઉદ્ધારક હતા. તેમના શિષ્ય શ્રીમદ્ રાજેન્દ્રસૂરિય યયા. જેમણે બાળ જીવોના હિત માટે અને કુક્ષી આદિ સંઘની વિનાંતિથી વિક્રમ સં. ૧૯૨૭માં આ અષ્ટાક્ષિકા વ્યાખ્યાનનો બાબાનુવાદ કર્યો.

રસનયન પૂરણ ચક્ષુ વર્ષે વાસસિયાણા રહી;
શ્રીમદ્ યતીન્દ્રસૂરિય અનુચર જયન્ત મધુકર સંગ્રહી.
નિર્વિઘ્નતાએ આજ આ ગુર્જર ગિરા અનુવાદને;
સંપૂર્ણ કરતાં સહજ ભાવે મેળવ્યો આહ્લાદને.



પર્યુષણ પર્વની સફળતા

લેખક : આચાર્યદેવ શ્રીમદ્ વિજય જયન્તસેનસૂરીયરથ મ.

અનાદિ કાળથી ચાલતું આવ્યું છે સંસારનું આ ચક્ર !
રાગની સુવાણી સેજમાં સુવાડતું આવ્યું છે જગતના જીવમાત્રને !
દ્વેષની આગમાં બાળતું આવ્યું છે આત્માના વિશુદ્ધતમ ગુણોને !
પરમ્પરાની સર્જયેલી અજ્ઞાનની અધિકતા અને સમ્યગ્જ્ઞાનની ન્યૂનતા ! અશ્રદ્ધાની અખટતા અને શ્રદ્ધાની નિર્પણતા ! ચારિત્રની ઉણપ, દુશ્ચારિત્રની વિપુલતા ! પછી...

ચત્નપૂર્વક સાધનામાં સફળતા મળવાને બદલે અનાદિનો ટેવાયેલ આત્મા નિષ્કળતા સિવાય કંઈપણ પામી શક્યો નહિ !

રાગની બહુલતા અને દ્વેષની વિપુલતાનું આ પરિણામ છે.

જીવનું જીવત્વ કળી શકાતું નથી અને પોતામાં પોતાનાથી બળી શકાતું પણ નથી.

જડની જખ્ખર ભીંસમાં જીવનની નાવડી ભવ નિરર્થકતાના આવારે આવીને ઊભી રહે છે.

ભાવની સડકથી ભટકી અને ભવના અરણ્યમાં ભૂલા પડેલા તમામ જીવોને પરમાત્માની પવિત્ર વાણી માર્ગદર્શન કરતી આવી છે અને સરળતાથી સમજી શકાય તેવા એ મીઠા વેણુ રણમાં મીઠી વીરડીનું કામ કરે છે.

રે! ભવ્ય!

કેટલું તો સુંદર ઉદ્દેશ્યોધન.

તો પછી તું તારા ભવ્યત્વને પ્રગટ કર!

એ દિશા વિપરીત હોય તો દિશાને બદલી દે! અનુકુળ દિશાનો યાત્રી બનવાનું છે તારે!

આજ સુધી મન, વચન અને કાયાને મેલાં કરવાની પ્રવૃત્તિમાં રસ દાખવ્યો અથવા રાખ્યો પરંતું હવે.....

અનુચિત વિચારોને વેગ ઘણો આપ્યો, હવે એ અનુચિત વિચાર શ્રેણિને અંતર પ્રદેશમાંથી વિદાય આપ! કારણ સમુચિત વિચાર તારા મનોપ્રદેશને લીલોછમ કરી દેશે. અનુચિત વિચારોના સંતાપમાં ગુણના છોડવા પાંગરી શકે જ નહિ!

એ મનોપ્રદેશની શાંતિ પછી વધતારી સંશુદ્ધિથી કોઈ પણ જાતની માનસિક પિડાનો સદાના માટે અંત આવશે! અને એ અંત અનન્તતા તરફ લઈ જનારો બનશે.

આ જીભલડીને નિરંકુશ મૂકીને જેમ તેમ વાળતો આવ્યો છે જીવનભર! પરંતુ હવે એ નિરંકુશ જીભડીને નાથવાનો પુરુષાર્થ કરે! એને વશ થઈને રહેવામાં હાની છે, એને વશ કરવામાં લાભ છે! દુષ્ટ કથનમાં પ્રધાનપણે આજ કામ કરતી હોય છે. હાડકા વગરની આ જીભલડીને અંકુશ તો રાખવાની અત્યંત જરૂર છે. લક્ષ્ય રાખવાનું છે કે અથોવ્ય વચનવ્યવહાર વધી જાય નહિ!

અનાદિકાળથી આ શરીરને વિરાધનાના માર્ગે ગોઠવીને આત્મિક લાભ કમાઈ શક્યો નહિ! માત્ર શરીરની ચિંતા કરી, સંજ્ઞતાની અંશ

માત્ર ચિંતા કરી જ નહિં! એ વિશુદ્ધ વિચારણાથી વેગળો જ રહ્યા! સાધનની સંભાળ રાખી પરંતુ સાધના અને સાધ્યનો લેશમાત્ર વિચાર કર્યો નહિ! હવે આ શરીરને તારી આરાધનાની પ્રવૃત્તિમાં સ્થિર કરવા ઉદ્યમ વંત ખન. એ પ્રવૃત્તિ નિવૃત્તિમૂલક ખનશે અને તારો ઉદ્યમ તને સર્વાત્ર શ્રેય આપનારો ખનશે!

અનાદિના અજ્ઞાનમય વલણના લીધે વિજેતાઓના શાસનમાં પણ ભાગ્યવન્તો જીવ જીવન સકુળતાની લહાણી લઈ શકતો નથી ત્યારે અનન્ત કષ્ટાના ભંડાર જ્ઞાનીઓ ઉત્તમ ભાવોની લહાણી કરતા જાય છે, અને આરાધક આત્માઓ કહેતા જાય છે, જીવન ધન્ય કરવાનું!

ખોલ દેવાનુપ્રિય! ખોલ!

તારા અંતરના દ્વારને ખોલ રે ભાઈ ખોલ!

તારે આ લહાણુ લેવાની છે, લીધા વિના પાસવવાનું જ નથી.

રાગમાં રાચીને રહીશ તો સંસારમાં નાચતો રહીશ.

મર્કટના સમું જીવન જીવીને ભવને વેડકી દર્શી.

ઉત્તમ અવસરનો લાભ તું ચૂકી જઈશ.

રાગનો ત્યાગ કરીશ જેટલો એટલો ત્યાગનો રાગ વધારી શકીશ.

પ્રસન્નવદને છેડવું એ ત્યાગનો રાગ કહેવાય!

વિષાદ વગર છેડવું રાગનો ત્યાગ કહેવાય!

રાગમાં રાચવું કષાયના મેળા જેવું છે.

ત્યાગમાં રાચવું કષાયને ટાળવા જેવું છે.

રાગમાં જન્મે માયા અને લોભ!

જે આકાશ જેટલા અસીમ છે, સમુદ્ર જેટલા અપાર છે અને જળતરંગ જેમ આત્માને કેવળ ઊંચા કરી પટકી દેનાર છે.

ત્કાગમાંથી જન્મે સત્ય અને સતોષ! જેનાં સીમા અને બંધન હોય છે. અપારમાંથી પાર પામવો સહજ થઈ જાય છે.

કષાય વધે તો બંધન વધે અને બંધન વધે તો શાંતિ અને સુખ ઘટે!

સુખ ઘટે તો દુઃખ વધે અને દુઃખ વધે તો આધિ વ્યાધિ અને ઉપાધિ વધે, વધતાં વધતાં વધી જાય !

સાવધાની ન રહે તો સંસારનો ભાવ વધી જાય ! સંસારનો ભાવ વધી જાય તો કર્મસત્તાના દબાણમાં દબાઈ જવાય ! પરિણામ સાર્થક નહિ, નિરર્થક આવીને ઊભું રહે !

વીતરાગના શાસનમાં રહેલા આરાધકોનો રાગ ઘટતો રહે છે. અનન્તનો રાગ ઘટ્યો છે અને જેમનો રાગ ઘટ્યો છે તેમનો રાગ પણ મટ્યો છે.

ભવના રોગને ઘટાડવા ભાવના ઔષધનું સેવન આવશ્યક છે. ભાવની ઔષધિનું સેવન ભવની સફળતા માટે અને ભ્રમણાના રોગને મટાડવા માટે અચુક ઈલાજ સમાન છે.

શુભ ભાવની વૃદ્ધિ અને નિર્મળતા માટે આવ્યા છે પર્વોના રાજ સરખા પર્વાધિરાજ પૂર્વપણુ.

આ પર્વની પાવનતા પ્રસિદ્ધ છે.

લોકોત્તર પર્વની આરાધના લોકોત્તર ભાવોને લઈને જ કરી શકાય ! જ લોકોત્તર પ્રખળ અને તો લૌકિકની ભભકાભરી મોહકતાથી વેગળો થઈ આત્મા અનન્તદર્શન કરવા ભાગ્યશાળી અને !

પાવનતા ટકાવવા અને મઢીનતા અટકાવવા માટે આગળ આવવું જોઈએ. હવનની સિદ્ધતા અને શુદ્ધતાને પ્રગટ કરવા માટે પર્વની આરાધના અત્યન્ત આવશ્યક છે.

ભાવવર્ધક શુભ પ્રવૃત્તિની વૃદ્ધિ થવી જોઈએ, દેવ ગુરુ અને ધર્મની વિશુદ્ધતામાં પૂર્ણરૂપે વિશ્વાસ જન્મવો જોઈએ !

મનની મર્કટતા અને ઇન્દ્રિયોની નિરંકુશતા પરત્વે અગમચેતીનાં પગલા ભરવાં જોઈએ ! માનનું મર્દન કરવું જોઈએ !

માયાની વેલડીને ઉખાડીને ફેંકી દેવી જોઈએ. ક્રોધને તપાવવો જોઈએ. લાભના ભયકર વિષધરથી પોતાની જાતને બચાવવી જોઈએ ! તો.... તો પર્વ સફળ ! પર્વનું આવવું સફળ !

અને સફળ ધર્મની શુભ પ્રવૃત્તિ!

મંત્રોમાં મોટો નવકાર અને પક્ષીમાં મોટો હંસ!

તેવી જ રીતે પર્વોમાં મોટા પર્વુષણ.

સમતાની સરિતાને વહેવડાવતાં આવે આ પર્વ! કલ્યાણનો માર્ગ બતાવતાં આવે આ પર્વ!

મોટો ભવ માનવનો, ઉત્તમ વાણી વીતરાગની અને અનુકુળતા મળી સર્વ પ્રકારે તે પક્ષી ધર્મપ્રવૃત્તિમાં નિષ્ઠાપૂર્વક આગળ આવવું એમાં જ પર્વની સફળતા.



આરાધકે બનવા માટે

લેખક : પૂ. આચાર્યદેવ શ્રીમદ્ વિજય જયંતસેનસૂરીશ્વરજી મ 'મધુકર'

જે નીતિનું પાલન સંસ્કૃતિનું સંરક્ષણ અને નૈતિકતાની વૃદ્ધિ કરે એને કહેવાય છે શાસન!

જેનાથી જીવનનું નિર્માણ થાય, વિકાસ વેગવતો બને અને વૈશિષ્ટ્ય જગત્પી શકે એને કહેવાય અનુશાસન!

જેના કારણે પૌદ્ગલિક પરિણમન મંદ બને, ઇન્દ્રિયજન્ય સુખોથી નિવૃત્તિની પરિણતિ તીવ્ર બને અને સાધના માટેની દષ્ટિ નિર્મળ બને એને કહેવાય આત્માનુશાસન!

જે જીવમાત્રને જીવવાના હક્કનો વોષ કરે, જીવમાત્રને સંસારથી મુક્તિ મેળવવાનો અધિકાર જાહેર કરે અને જે પ્રત્યેકને ચરમ અને પરમપદની પ્રાપ્તિ માટે પ્રેરણા નિયમિત આપે તેને કહેવાય "જૈનશાસન"

વ્યવસ્થિત સંચાલન માટે જોઈએ શાસન. જીવનને જગમગતું રાખવા માટે જોઈએ અનુશાસન.

અંતરશુદ્ધિ-વિશુદ્ધિ માટે પરમ આવશ્યક છે આત્માનુશાસન! અને મૈત્રી, પ્રમોદ, કારુણ્ય અને માધ્યસ્થ ભાવનાને સાકાર બનાવવા માટે

કષાયોથી મુક્તિ મળે અથવા કષાય વિગેરે દ્વારા જે કદર્થના કરી છે; તે પદ્મ આપણે એની સાચા અંતરથી ક્ષમા યાચીએ મન, વચન, કાયાની શુદ્ધિથી ખમાવતાં તે ચારેને પણ ત્યાં જ કેવળજ્ઞાન ઉત્પન્ન થયું. આયુષ્ય પૂર્ણ થતાં એ મુનિવરો પણ અજરામર પદ પામ્યા છે સાચી ક્ષમાપનાનો પ્રભાવ.

મુક્તિના માર્ગે આત્મા વળે ત્યારે જ મૈત્રીય ભાવનાનો ઉદ્ભવ થઈ શકે આ હૃદયના ક્ષેત્રમાં.

ગુણાનુરાગી ખનીને ગુણીજનોના ગુણદર્શનથી પ્રકૃલિત થવાય. જ્યારે ત્યારે જાગ્યો કહેવાય પ્રમોદભાવ. એ ભાવ કષાયક્ષયમાં ખળ આપનારો થાય અને મૈત્રીય ભાવને પુષ્પિત, પલ્લવિત અને ફલિત કરનારો થાય.

હીન- હીનજનોને દેખતા, અસહાય જીવાત્માઓની સામે દૃષ્ટિ પડતાં જ કારુણ્યભાવનો જ્ઞાત વહેવા માંડે જ્યારે, ત્યારે જ સમજી શકાય કે કે પ્રમોદભાવની પુષ્ટિ આત્મપ્રદેશમાં થઈ રહી છે.

પોતાની હુકમથી ન છેડનારા એવા નાસ્તિક જીવો પ્રત્યે દ્વેષભાવ ન જાળે અને એવાઓના તરફ પણ હિતબુદ્ધિથી માધ્યસ્થ ભાવોનો આભિભાવ થાય જ્યારે, ત્યારે જાણવું કે કારુણ્યભાવના અંતરપ્રદેશમાં વસેલી છે.

મૈત્રી, પ્રમોદ, કારુણ્ય અને માધ્યસ્થ ભાવને સંવરેલો આત્મા આરાધનાના અનુપમ માર્ગે આગળ વધે અને સાધનાના પુનિત પંથનો અમર યાત્રી ખની શકે.

આ આરાધનાના માર્ગે આત્મા ક્યારે જોડાય અને કેવી સ્થિતિમાં સ્વરૂપ કેવું રહે, એ પણ વિચારણીય છે!

સમ્પૂર્ણ વિશ્વ કર્મચક્રમાં બંધાયેલું અથવા ફસાયેલું છે. જ્ઞસ્થ અવસ્થા-સંસાર તરફના આંશિક રાગની અવસ્થાને પણ સંસાર જ કહેવાય.

રાગ અને વિરાગનો ભેદ જ્યાં સુધી ઘટે નહીં અને વિરાગમયી સ્થિતિ દ્રઢ બને નહિ ત્યાં સુધી ભવોના બંધનોથી ખચવાનો માર્ગ વેગળો જ રહે છે!

આમ કર્મચક્રના કારણે કોઈ જીવ તે પ્રસુપ્ત અવસ્થાવાળા છે, તે કોઈ સુપ્ત અવસ્થાવાળા છે, કોઈ જાગૃત અવસ્થામાં છે, તે કોઈ ઉત્થિત થયેલા દેખાય છે, તે કોઈ પ્રસ્થિત પણ થઈ ગયા હોય છે.

જેઓ મોહની દશામાં અને મોહના નશામાં ચક્રચુર થઈ ગયેલા હોય છે, જેમને ધર્મ-કર્મનું જ્ઞાન નથી, જેઓ જડાસક્ત બનીને સંસારના યજ્ઞકુંડમાં જીવનની આહુતિ આપી રહ્યા છે, આ બધાય જીવો પ્રસુપ્ત અવસ્થાવાળા બણ્યા. જેઓ ક્યારેય આંખ ઉઘાડીને પોતાની સ્વયંની અવસ્થા, સદવસ્થા કે દુરવસ્થાનો વિચાર સુઝાંચ કરી શકતા નથી.

જેઓ આસક્તિથી છુટવા મથતા નથી છતાં આસક્તિની ભયંકરતાને બણ્યા હોય છે, તે જીવોને સુપ્ત સ્થિતિવાળા કહ્યા છે. જેઓ બણ્યા છતાંય આચરવાની તત્પરતા દાખવી શકતા નથી.

જેમને આસક્તિ, મિથ્યાત્વમયી પરિણતિ તથા સંસારનાં બંધનોનું જ્ઞાન થાય અને જેઓ એ બંધનોથી જેમ બને તેમ છુટવાનો પ્રયત્ન કરતા હોય છે, યથાશક્ય છુટતા બચ છે, તે જીવોને જાગૃત દશાવાળા કહેલા છે જેઓ બંધનથી મુક્તિનો અધિકાર મેળવી લે છે.

જેઓ મિથ્યાત્વથી મુક્તિ મેળવીને, આસક્તિને અજગી કરીને સમ્યક્ત્વના ભાવથી ઓતપ્રોત થયેલા છે, લૌકિક અને લોકોત્તર ભાવોને સંપૂર્ણપણે સમજ લીધા છે જેણે, એ બધાય જીવોને ઉત્થિત એટલે ઉભા થયેલ સમજવા બેઠ્યે. જેમને ચરણ, કરણ અને મનમાં અપૂર્વ આહુલાદ અને રસાસ્વાદનો અનુભવ થાય છે.

જેઓ વિશુદ્ધિ પરિણતિમાં રમણ કરતા હોય છે, તમેવ સત્ત્વં જં જિણેણ દેક્ષિત્વં ના ભાવને જેમણે દ્રવ્ય અને ભાવથી પોતાના વિચાર અને આચારમાં ઉતારી લીધા હોય છે. ત્વાગમાં જેમને આનંદ આવતો હોય છે, રાગમાં નિરસતા દેખાતી હોય છે, આરાધક ભાવ પ્રબળ બનતો રહે અને વિરાધક ભાવ જેમને સ્વપ્નમાં પણ સ્પર્શી શકતો નથી તે જીવોને પ્રસ્થિત થયેલ સમજવા બેઠ્યે.

જેમને ક્રમશઃ ગુણસ્થાનકની સ્પર્શના થતી જતાં પ્રંથીભેદ અને અપુનર્બંધક દશાની સ્થિતિ પ્રાપ્ત થઈ બચ છે.

પર્વાધિરાજ પર્યુષણ !

મૈત્રી, પ્રમોદાદિ ભાવોને આત્મસાત્ કરવા માટે પ્રબલ પ્રેરણા આપનાર છે.

જગો, ઉઠો ! અને આગળ વધોનો શંખનાદ કરનાર છે.

ભવ્યોની ભવ્યતાને છતી કરવા અને આરાધનાના મંગળમય માર્ગે પ્રયાણ કરવાની હાકલ કરતા પર્વાધિરાજ જણાવે છે કે, તમારા જીવનની સ્થિતિનાં દર્શન કરો અને નિહાળો તો ખરા કે તમે ક્યાં છો ? તમારી ભૂમિકા કેવી છે ? અને તે ક્યા સુધી વ્યવસ્થિત છે આ દિગ્દર્શનના માટે જ પર્વાધિરાજના પુનીત પ્રસંગે સાખદા બનો ! પછી જ શાસન, અનુશાસન, આત્માનુશાસન અને જૈનશાસનની આરાધનાના ભાગી બની શકશો.



દષ્ટિવાદથી લાભ

લેખક : પૂ. આચાર્યદેવ શ્રી વિજય જયન્તસેનસૂરીશ્વરજી મ. 'મણ્ડકર'

જે જીવને પરમાત્માના પરમતારક શાસનમાં જીવન વ્યતીત કરવાનું મળે તે જીવને પરમાનંદ હોય, જ્યાં સુધી વિચાર વિનિમયતા જાગતી નથી ત્યાં સુધી તત્ત્વગમ્ય સ્થિતિએ પહોંચવું આત્માના માટે ઘણું દુર્લભ રહે છે.

દષ્ટિવાદનો અનુગામી અને અનુયાયી બની ગયા પછી આત્મદેવને જગતમાં રહેલા પ્રત્યેક પદાર્થની સ્થિતિ અને સિદ્ધાન્તની શાશ્વત સ્થિતિનું સ્વરૂપ ખૂબ સુંદર સમજાય છે.

નયવાદ અને સાપેક્ષવાદને દષ્ટિના સામે રાખી લેવાય ત્યારપછી એવી વિચારણા નહિ રહે જે એ વાદના ચોકઠામાં ન ગોઠવી શકાય ?

દષ્ટિવાદ, નયવાદ અને સાપેક્ષવાદથી જ્યારે મનાભિમુખી થઈ જાય છે. ત્યારે પોતાની દષ્ટિ સિવાય બીજાની દષ્ટિ અને પ્રિય લાગતી જ નથી. પરંતુ

જ્યારે દષ્ટિ સ્વાભિમુખી થાય છે ત્યારે જગતમાં વ્યાપ્ત પ્રત્યેક દષ્ટિનો સમન્વય કરવાની શક્તિ સાંપડે છે.

દષ્ટિવાદ એટલે જૈનશાસન! દષ્ટિરાગ એટલે એનાથી વિરુદ્ધચરણ.

જ્યાં અને જ્યારે દષ્ટિરાગની સ્થિતિ દૃઢ થઈ જાય છે, ત્યાં અને ત્યારે એ આત્મપ્રદેશો પર અંધશ્રદ્ધાના જાળાં બાંધી જાય છે. એ અંધ-શ્રદ્ધા જ્યારે ભક્તિના રૂપમાં પરિણમે છે ત્યારે ત્યારે એ ભક્તિ પણ મમત્વ અને કદાચહને જ પોષણ આપનારી બને છે.

જિનેન્દ્ર પ્રવચનમાં દષ્ટિરાગીને સ્થાન સંભવે જ શી રીતે? દષ્ટિવાદીજ જિનશાસનના આરાધક, ઉપાસક, અને સંરક્ષક બની શકે છે.

પોતાની વાત માત્ર સત્ય છે અને અન્યની અસત્ય! એવો જ્યારે એકાન્તિક પક્ષપાત હૃદયમાં જાગે છે ત્યારે આત્મા અનેકાન્તિક પક્ષકાર બનવાનું બધુંય સામર્થ્ય ગુમાવી બેસે છે.

જ્યારે પોતાની દૃષ્ટિનું જ સમર્થન કરવાની અને અન્યનું ઉત્થાપન કરવાનું ધ્યેય રહે છે ત્યારે ગુણાનુચી અને ગુણુપાક્ષિક બનવાની પોતાની સ્થિતિનો પોતે જ વિનાશક બની જાય છે.

દષ્ટિની પ્રાપ્તિ અનુભવ ઉપરથી સમજી શકાય છે. અનુભવીઓ આરાધનાને મહત્ત્વ આપે છે અને આરાધકભાવ અન્તર પ્રદેશમાં પ્રબળ બને તેવી રીતનો એમનો વ્યવહાર હોય છે.

ગુણી વિના ગુણુ ન હોય એટલે આધારાધેય ભાવનો સમન્વયાત્મક દષ્ટિકોણ જ્યારે બની જાય છે ત્યારે કોઈના પ્રત્યે અણુગમો કે સૂગને ઉત્પન્ન થવાનો અવકાશ રહેતો નથી.

જ્યારે દષ્ટિ વિકલ બની જાય છે ત્યારે પોતાની વિકલતાનો ખ્યાલ રહેતો નથી અને સર્વત્ર પોતા સિવાય બીજામાં વિકલતા દષ્ટિગોચર થતી દેખાય છે.

પરિણામે ઉહાપોહ અને અજંપા સિવાય બીજું કંઈ રહેતું જ નથી. મનની વિહ્વળતા, તનની ચંચળતા અને વચનની વિસંવાદિતા વધતી જતાં ધાર્યા કરતાં સ્થિતિ ઉલટી થતી દેખાય છે.

સાધક, આરાધક અને શાસનના અદના ઉપાસક બનવા માટે દૃષ્ટિની વિશાળતા હોવી જોઈએ.

અસત્યમાં પણ અસત્યરૂપે સત્ય તો સમાયેલું છે.

નૈગમ નયનો અભ્યાસી અને જ્ઞાતા જગતમાં થતી કોઈપણ સ્થિતિને વિકાસ માટેનો પ્રારંભ માને છે. પરંતુ એ સ્થિતિ એવંભૂત નય તરફ આગળ વધનારી હોવી જોઈએ. સંપૂર્ણ અશુદ્ધિથી પરિપૂર્ણ શુદ્ધિ તરફ જવાની જે ક્રિયા-પ્રક્રિયા છે તેને નયવાદ ક્ષેપ્યો છે.

કોઈપણ દૃષ્ટિની પોતાની મર્યાદા છે. પોતાની મર્યાદામાં પોતે નિશ્ચિત સત્ય હોય પરંતુ બીજાની મર્યાદાનો સંપૂર્ણ અપલાપ કરવાની વૃત્તિ દૃષ્ટિસાપેક્ષની નહિ દૃષ્ટિનિરપેક્ષની સમજવી જોઈએ.

દૃષ્ટિસાપેક્ષતાની સ્પષ્ટતા માટે તો જૈન જગતમાં એક નહિ અનેક આખ્યાનો-ઉપાખ્યાનો વર્ણવેલાં છે.

સોનેરી રૂપેરી ઢાલની સીધી સાદી આખ્યાયિકાને કોણ નથી જાણતું? જૈન સિદ્ધાન્તના પ્રતિપાદનને માટે અપાતા આ દૃષ્ટાન્તનું અનુકરણ કરવાની વૃત્તિ પ્રબળ બને તો જૈનશાસનની પ્રત્યેક વાતને સમજવી સરળ બની શકે અને અનેક જ્ઞાતની વ્યર્થની મજબુત પકડથી આત્મા મુક્ત પણ બને.

સાત અંધ પુરુષોનું સ્થાનક એજ વસ્તુને પુરવાર કરે છે.

એકાંગી ગ્રાહક અપૂર્ણ છે, જ્યારે સર્વાંગી ગ્રાહક સંપૂર્ણ છે. એ વસ્તુસ્થિતિને દૃષ્ટિવાદી બનીને શીખી લેવાય જ્યારે, ત્યારે અનેક પ્રકારના અનર્થોને અટકાવી શકાય છે. આ છે દૃષ્ટિવાદની મહત્તા !

